[ टॉल्सटॉय-ग्रन्थावलि : चौथी पुस्तक ]

# स्त्री और पुरुष

[ टॉल्सटॉय की Relation of the Sexes का अनुवाद ]

अनुवादक
**श्री वैजनाथ महोदय**

**सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली**
—शाखायें—
दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

१९५।

काउण्ट टॉल्स्टॉय की गणना योरप के महापुरुषों में की जाती है। वह एक महान् विचारक और कलामर्मज्ञ हो गये हैं। जीवन को उच्च और सुन्दर बनानेवाले प्रायः प्रत्येक विषय पर उन्होंने दिव्य ग्रन्थों की रचना की है। मौलिकता और सूक्ष्मता उनकी विचार-प्रणाली के मुख्य गुण हैं। उनके दिव्य विचार हृदय में बैठे बिना नहीं रहते। 'स्त्री और पुरुष' उन्हीं की मार्मिक लेखनी से निकली अपूर्व पुस्तक का अनुवाद है। इसका विषय है स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सम्बंध का आदर्श। टॉल्स्टॉय ने ब्रह्मचर्य को आदर्श, विवाह को मनुष्य-जाति की कमजोरी की रियायत और मानव-जाति की सेवा को उसका उद्देश माना है। हज़रत ईसामसीह की शिक्षाओं का यही सार आपने बताया है। उनका यह निष्कर्ष हमारे हिन्दूधर्म के जीवनादर्श और विवाहोद्देश के बिलकुल अनुकूल है। उनकी मूल पुस्तक ईसाई और योरपवासियों को ध्यान में रखकर लिखी गयी है। इसलिए उसमें ईसामसीह की शिक्षाओं का विवेचन प्रधान रूप से होना स्वाभाविक है।

भारतवर्ष के सामने भी इस समय स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध का प्रश्न बड़े विकट रूप में उपस्थित है। ब्रह्मचर्य के उच्च आदर्श तथा विवाह के सच्चे उद्देश्य को भूल जाने के कारण हमारा न केवल शारीरिक ह्रास ही हो रहा है, बल्कि मानसिक और आत्मिक पतन भी होगया है और होता जा रहा। विषय-क्षुधा के असहाय शिकार होकर हम एक ओर जहाँ दाम्पत्य-जीवन को कलह, व्याधि और अशांतिमय बना रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर समाज और देश को पतन के गलत रास्ते की ओर ले जा रहे हैं। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह जैसे भयंकर राक्षस जिस समाज को एक ओर से निगल रहे हों और दूसरी

और जिसका युवक-दल असीम विषयोपभोग को ईश्वरीय इच्छा, प्राकृतिक धर्म का पालन समझकर विनाश के गर्त्त में गिरने में मग्न हो, उसके लिए ऐसी पुस्तकों का प्रकाशन—ऐसे दिव्य विचार-रत्नों का प्रचार ईश्वरीय देन समझना चाहिए। विवाह और दाम्पत्य-धर्म से सम्बन्ध रखनेवाली प्रायः प्रत्येक महत्त्वपूर्ण गुत्थी पर इसमें दैवी प्रकाश डाला गया है—उसे एक प्रकार से मौलिक रूप से सुलझाने का यत्न किया गया है और मेरा ख़याल है कि टॉल्स्टॉय को उसमें पूरी सफलता मिली है।

ऐसी अनमोल और सो भी इतनी गम्भीर और महत्वपूर्ण विषय पर एक महान् क्रान्तिकारी मौलिक विचारक की लिखी पुस्तक के अनुवाद का अधिकारी मैं अपने को नहीं मान सकता। इस अनाधिकार-प्रवेश का साहस केवल इसी कारण हुआ है कि मुझे टाल्स्टाय का स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी आदर्श प्रिय है और उसके पालन का दीर्घ उद्योग किये बिना मैं भारत की शारीरिक उन्नति और नैतिक विकास को असम्भव मानता हूँ। लोहे की अँगूठी में जड़ा यह रत्न पाठकों को अखरेगा तो; पर आशा है वे यह समझकर मेरे साहस को अपना लेंगे कि मेरे पास जो अच्छी से अच्छी चीज थी, उसीके साथ मैंने इस रत्न को उनके अर्पण करने की चेष्टा की है। रत्न तो स्वयं प्रकाश्य होता है, लोहे में से भी वह अपनी प्रभा फैलाये बिना न रहेगा।

बैजनाथ महोदय

# स्त्री और पुरुष

"ब्रह्मचर्य वह आदर्श है, जिसके लिए प्रत्येक मनुष्य को हर हालत में और हर समय प्रयत्न करना चाहिए। जितना ही तुम उसके नज़दीक जाओगे, उतना ही अधिक परमात्मा की दृष्टि में प्यारे होओगे और अपना अधिक कल्याण करोगे। विलासी बनकर नहीं, बल्कि पवित्रता-युक्त जीवन व्यतीत करके ही मनुष्य परमात्मा की अधिक सेवा कर सकता है।"

Presented to:—
Mahaveer Wachnalay
Mahavirjee.

By:— *Jokhiram Baijnath*
*173, Harison Road;*

: १ :

समाज के प्राय सब लोगों में यह धारणा जड पकड़ गयी है और झूठे विज्ञान के द्वारा इसका समर्थन भी किया जाता है कि विषयभोग ( मैथुन ) स्वास्थ्य-रक्षा के लिए नितान्त आवश्यक है। लोग कहते है कि चूँकि विवाह कर लेना प्रत्येक मनुष्य के हाथ मे नहीं है, इसलिए विवाह न करके व्यभिचार द्वारा अपनी विषय-क्षुधा को शान्त करना पूर्णतया स्वाभाविक है। सिवा पैसे के इसमे मनुष्य पर किसी प्रकार का बन्धन भी नहीं है। अत इसको प्रोत्साहन देना चाहिए।

यह भ्रम-मूलक धारणा जनसाधारण में इतनी फैल गयी है कि कितने ही माता-पिता अपने बच्चों के स्वास्थ्य के विषय में चिन्तित हो, डाक्टर को सलाह लेकर, उन्हें इस बुरे कार्य के लिए उत्साहित करते हैं। सरकारें भी, जिनका धर्म है कि वे अपनी प्रजा के नैतिक जीवन को उच्च बनायें, इन दुर्गुणों को उत्तेजना देती हैं। उन्होंने स्त्रियों के एक पृथक् वर्ग की ही व्यवस्था कर ली है, जिन बेचारियों को पुरुषों की इन काल्पनिक आवश्यताओं को पूरा करने की खातिर शारीरिक और आत्मिक विनाश के गड्ढे में पड़ना पड़ता है और अविवाहित पुरुष बिलकुल चुपचाप इस बुराई के पंजे में फँसते चले जाते हैं।

मै कहना चाहता हूँ कि यह बुरा है। यह जरूरी नहीं है कि कुछ लोगों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए दूसरों के शरीर और आत्मा को बर्बाद किया जाय। कुछ आदमियों का अपने स्वास्थ्य-

लाभ के लिए दूसरों का खून पीना जितना बुरा होगा, उतना ही बुरा यह कार्य है।

मैं तो इससे यही नतीजा निकाल सकता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह इस गलती और भ्रम से बचे। और इन बुराइयों से बचने का सबसे सरल उपाय तो यही है कि वे किसी भी अनीतिकर शिक्षा पर विश्वास न करें। भले ही झूठा विज्ञान इसका कितना ही समर्थन करे। दूसरे, मनुष्य अपने हृदय में यह समझ ले कि ऐसे विषयभोग में पडना, जिसके सम्भावित परिणाम—सन्तति—से बचने की कोशिश करके मनुष्य उनका तमाम भार स्त्रियों पर डाल देता है, जिन्हें संतति-निरोध के लिए बनावटी तरीके काम में लाने पड़ते हैं। यह नैतिकता का भारी-से-भारी उल्लंघन है—कायरता है। अतः पुरुषों को यदि कायरता से बचना है, तो उन्हें इन पापों के जाल में अपने को भूलकर भी न फँसने देना चाहिए।

यदि पुरुष संयम पसन्द करें, तो उन्हें अपना जीवन-क्रम अत्यन्त सरल और स्वाभाविक बना लेना चाहिए। उन्हें न कभी शराब पीनी चाहिए और न अधिक भोजन ही करना चाहिए। मांसाहार भी छोड़ देना अच्छा है। परिश्रम से ( यहाँ अखाड़े की कसरत से नहीं, बल्कि सच्चे थका देनेवाले उत्पादक परिश्रम से मतलब है ) मुँह न मोड़े और वह अपनी माता, बहन अन्य रिश्तेदार अथवा अपने मित्रों की पत्नियों से जितना सम्बन्ध रखता है उससे ज्यादा सम्बन्ध बढ़ाने की संभावना से बचता रहे। हर एक

आदमी को अपने आस-पास ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिल जायेंगे, जो उसको सिद्ध करके दिखा देंगे कि सयमशील जीवन व्यतीत करना केवल सभवनीय ही नहीं बल्कि असंयमशील जीवन की अपेक्षा कहीं कम खतरनाक और स्वास्थ्य के लिए कम हानिकर है। यह हुई पहिली बात।

दूसरे, फैशनेबल समाज के दिल में यह ख़याल जम जाने के कारण कि विषय-भोग स्वास्थ्य-रक्षा के लिए अनिवार्य ही नहीं है, बल्कि वह एक आनन्ददायक वस्तु है, और जीवन में काव्य-मय तथा उच्च कोटि का वरदान है, समाज के सभी अङ्गों मे व्यभिचार एक मामूली-सी बात हो गयी है। (मजदूर-पेशा लोगों में इस बुराई का कारण फौजी नौकरी भी है) मेरा ख़याल है कि यह भी अनुचित है और इन सब बुराइयों को दूर करना परमावश्यक है।

इन बुराइयों को दूर करने के लिए यह परमावश्यक है कि स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी प्रेम-विषयक जो कल्पनायें हैं, उन्हें बदल दें। माता-पिताओं द्वारा लड़के-लड़कियों को यह शिक्षा मिलनी चाहिए कि विवाह के पहले तथा बाद में स्त्री-पुरुषों का आपस में प्रेम करना और उसके बाद विषयोपभोग में मग्न हो जाना कोई काव्य-मय और उच्च कोटि की प्रशसनीय बात नहीं है। यह तो पशु-जीवन का चिन्ह है, जो मनुष्य को नीचे गिरा देता है।

विवाह के समय की पवित्रता से रहने की प्रतिज्ञा का भंग करनेवाले की समाज की ओर से कम से कम उतनी ही प्रताड़ना

और भर्त्सना तो जरूर होनी चाहिए, जितनी कि आर्थिक कर्तव्यों के भंग करनेवाले अथवा व्यापार में धोखेबाजी करनेवाले की होती है। नाटक, उपन्यास, कविताओं, गीतों और सिनेमा में यह बुराई जैसी है, उसको प्रोत्साहन प्रशंसा नहीं मिलनी चाहिए। यह हुई दूसरी बात।

तीसरे, विषयभोग को मिथ्या महत्त्व देने के कारण हमारे समाज में सतानोत्पत्ति का सच्चा अर्थ नष्ट हो गया है। सतानोत्पत्ति, सभोग तथा विवाह का उद्देश्य और फल होने के बजाय वह अब स्त्री-पुरुषों के प्रेमपूर्ण-सुख-संभोग मे बाधक हो गयी है। फलतः डाक्टरों की सहायता से विवाह के पूर्व और पश्चात् संतति-निरोध के उपायों का काम मे लाया जाना एक मामूली से मामूली बात हो गयी है। पहले गर्भावस्था और शिशु-पालन के समय में स्त्री-पुरुष विषयभोग नहीं करते थे, आज भी पुराने परिवारों में वह नहीं होता। पर अब तो गर्भावस्था और शिशु-संवर्धन के काल में भी विषयभोग करना एक मामूली रिवाज-सी हो गयी है। यह भी नितान्त अनुचित है।

सन्तति-निरोध के लिए कृत्रिम उपायों का अवलम्बन करना बहुत ही बुरा है, क्योंकि एक तो इससे मनुष्य विपय-प्रेम के प्रायश्चित-स्वरूप बच्चों के पालन-पोषण तथा शिक्षा आदि की चिन्ता से मुक्त होजाता है। और दूसरे इसलिए कि यह कृत्य मानव-अन्तरात्मा में विद्रोह करनेवाली नर-हत्या से कम नहीं है। इससे गर्भावस्था और शिशु-संवर्धन के काल में विपयोपभोग

करने से स्त्री की शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियों का पूर्ण विनाश हो जाता है।

अतः इस दृष्टि से विचार करते हुए भी हम इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि यह बुराई हमारे अन्दर से जितनी जल्द हो सके दूर होनी चाहिए। इसको यदि दूर करना है, तो मनुष्य को चाहिए कि वह संयम के महत्त्व को समझ ले। जो संयम अविवाहित अवस्था मे मनुष्य के गौरव की अनिवार्य शर्त है, वह विवाहित जीवन में इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह हुई तीसरी बात।

चौथे, जिस समाज में बच्चों का पैदा होना विषयानन्द में एक विघ्न, एक दुखद घटना, अथवा नियमित सख्या में ही हो, तो सुख का विषय समझा जाता है, उसमे इनका पालन-पोषण इस ख़याल से नहीं किया जाता कि वे बड़े होने पर उन प्रश्नों को सुलझावें, जो कि उन्हें विवेकशील प्रेमी जीव समझकर उनकी राह देख रहे है, बल्कि माता-पिता उनका पालन इसी ख़याल से करते हैं कि वे उनको सन्तोष और सुख देंगे। नतीजा यह होता है कि वे शिशु पशुओं के बच्चों की तरह पाले-पोसे जाते हैं। उनका पालन-पोषण करते समय माता-पिता यह कोशिश नहीं करते कि हमारे बच्चे बड़े होने पर मानवता के उलझे हुए प्रश्नों को सुलझाने योग्य बनें, बल्कि वे तो उन्हें मोटा-ताजा, सुन्दर और सुडौल बनाने के लिए खिलाते-पिलाते हैं और एक मिथ्या शास्त्र (वैद्यक) इनका समर्थन करता है। यदि निचले दर्जे के लोग यह नहीं करते, तो इसका कारण कोई उच्च आदर्श नही बल्कि उनकी दरिद्रता है।

चाहते तो वे भी यही हैं कि उनके बच्चे भी धनिकों के बच्चों जैसे ही सुन्दर, सुडौल और मोटे-ताज़े हों।

इन हद से ज्यादा खानेवाले बच्चों में, दूसरे तमाम ज्यादा खानेवाले पशुओं की नाईं बहुत छोटी उम्र में ही ऐसी काम-चेतना हो आती है, जिसे वे वश में नहीं रख सकते। वह जवानी आने पर उन्हें बेतरह सताती है। उनकी इस वैषयिकता को उनके वायुमण्डल से भी असाधारण पोषण और उत्तेजना मिलती है। वेशभूषा, किताबें, अच्छे अच्छे दृश्य, संगीत, नृत्य, मेले और डिब्बों पर की तस्वीरों से लेकर कथा-कहानियाँ और कवितायें तक जीवन की तमाम अन्यान्य आवश्यक चीजें उनकी कामुकता को बेहद बढ़ाती जाती हैं। फल यह होता है कि समाज के युवक-युवतियाँ अपने जीवन के यौवन-काल ही में विषयभोग-सम्बन्धी भीषण रोगों के शिकार होने लग जाते हैं। यह अत्यन्त दुःख की बात है।

इससे हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिए ? यही कि मनुष्यों के बच्चों का पालन-पोषण पशु के बच्चों की तरह होना बंद होना चाहिए। मानव-शिशु के शिक्षणकाल में उसको मोटा-ताज़ा और सुडौल बनाने की अपेक्षा दूसरी बातों की ओर विशेष ध्यान जाना चाहिए। यह हुई चौथी बात।

पाँचवें, हमारे समाज में युवक और युवतियों का आपस में प्रेम करना मानव-जीवन की सर्वोच्च कल्पनात्मक महत्त्वाकांक्षा समझी जाती है। (ज़रा हमारे समाज की कला और काव्य की

ओर दृष्टिपात करके देख लीजिए।) युवकों का तो वैरोक-टोक प्रेम या विवाह करने के लिए प्रेमपात्र युवती को ढूँढने में और प्राप्त करने में तथा स्त्रियों और लड़कियों का ऐसे पुरुषों को लुभा कर अपने प्रेम या विवाह के जाल फँसाने में ही अपने जीवन का बढ़िया से बढ़िया हिस्सा बरबाद होता है।

इस तरह देश के पुरुषों की सर्वश्रेष्ठ शक्तियाँ ऐसे काम में खर्च हो जाती हैं, जो न केवल निरर्थक बल्कि हानिकर भी हैं। हमारे जीवन में इतनी व्यर्थ की विलासिता बहुत-कुछ इसी कारण है। इसी के कारण पुरुषों में आलस्य और स्त्रियों में निर्लज्जता बढ़ती जाती है। कुलीन स्त्रियाँ नीच कुलटाओं की देखा-देखी नित्य नये फैशन सीखती जाती हैं और पुरुषों के चित्त में काम की आग को भड़कानेवाले अपने अङ्गों का प्रदर्शन करने में जरा भी नहीं हिचकिचातीं। क्या यह पतन का सीधा मार्ग नहीं है?

काव्य और प्रेम-शौर्य की अद्भुत कथाओं में भले ही स्त्री-पुरुषों के इस सम्बन्ध को आदर्श के सर्वोच्च शिखर पर बैठा दिया हो, किन्तु यथार्थ में देखा जाये, तो अपने प्रेम-पात्र के साथ विवाह करके या बिना विवाह किये ऐसा सम्मिलन उतना ही अनुचित है, जितना कि अच्छे-अच्छे मनमाने पकवानों का खूब खा लेना मनुष्योचित नहीं है। भले ही कुछ लोगों की नजर में वे एक नियामत हों।

तो निष्कर्ष यह निकला कि मनुष्य को चाहिए कि वह विषयोपभोग को एक उच्च कोटि की वस्तु समझना छोड़ दे। जरा

सोचिए तो सही, विवाहित होकर या अविवाहित ही प्रेम-पात्र से संभोग करके मनुष्य को किस मानवीय ध्येय की प्राप्ति में सहायता मिलती है मनुष्य जाति की सेवा में, देश की सेवा में, शास्त्र-ज्ञान मे, कला निपुणता में ? ईश्वर-पूजा तो दूर की बात है। वह तो इनमेसे किसी एक के भी योग्य नहीं होता। वह प्रेम करना अथवा विषय-भोग में पड़ जाना मनुष्य के कार्य में कभी सहायता नहीं पहुँचाता। हाँ, मनुष्योचित ध्येय की प्राप्ति मे सदैव विघ्न जरूर उपस्थित कर देता है—काव्य और उपन्यास भले ही उसकी तारीफों के पुल बांधे और इसके विपरीत सिद्ध करने की कोशिश करें। यह हुई पाँचवी बात।

मैं जो कुछ कहना चाहता था, वह संक्षेप में यही है। जहाँ तक मै सोचता हूँ, अपनी कहानी मे मैने यह दरसा भी दिया है। उपर्युक्त विवेचन-द्वारा जो बुराई बतायी गयी है, उसके दूर करने के उपायों में भले ही मतभेद हो सकता हो, परन्तु मेरा खयाल है कि इन विचारों की सचाई से किसी का सहमत होना बिलकुल असम्भव है।

और असहमत कोई हो भी क्यों ? उसका सबब तो यह है कि इस बात को सभी मानते हैं कि मनुष्य-जाति नैतिक शिथि-लता से पवित्रता की ओर धीरे-धीरे प्रगति करती जा रही है और उपर्युक्त विचार इसके अनुकूल हैं। दूसरे यह समाज और व्यक्ति दोनों के विवेक और अन्तरात्मा के अनुकूल भी है। दोनों वैषयिकता की निंदा और मित्रता की तारीफ़ करते हैं। फिर ये हमारी धार्मिक

शिक्षा के निष्कर्ष-भर हैं, जो हमारे नैतिक विचारों की बुनियाद में है और जिनका हम शिक्षण देते हैं या कम-से-कम मानते अवश्य हैं—पर बाद में मेरा यह खयाल गलत साबित हुआ।

पर यह तो सत्य है कि प्रत्यक्ष रूप से इन विचारों की सच्चाई में कोई शक नहीं करता कि विवाह के पहले या बाद में विषयोपभोग अनावश्यक है—कृत्रिम उपायों से सन्तति का निरोध नहीं करना चाहिए। बच्चों को खिलौना नहीं समझना चाहिए और स्त्री पुरुषों को दूसरी बातों की अपेक्षा दैहिक संभोग को ऊँचा नहीं समझना चाहिए। अथवा एक शब्द मे कहें, तो किसी को इसपर विरोध नहीं है कि विषयोपभोग की अपेक्षा संयम—ब्रह्मचर्य—कहीं अधिक श्रेष्ठ है। पर लोग पूछते हैं "यदि ब्रह्मचर्य विषयोपभोग की अपेक्षा श्रेष्ठ है, तो यह स्पष्ट है कि मनुष्य को श्रेष्ठ मार्ग ही का अवलम्बन करना चाहिए। पर यदि वे ऐसा करें तो मनुष्य-जाति नष्ट न हो जायगी ?"

किंतु पृथ्वीतलसे मनुष्य-जातिके मिट जाने का डर कोई नवीन बात नहीं है। धार्मिक लोग इसपर बड़ी श्रद्धा रखते हैं और वैज्ञानिकों के लिए सूर्य के ठण्डे होने के बाद यह एक अनिवार्य बात है। पर हम इस विषय मे यहाँ कुछ न कहेंगे। इस दलील में एक बड़ी व्यापक और पुरानी गलत-फहमी है। लोग कहते हैं कि यदि मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहने लग जायें, तो पृथ्वी-तल से मनुष्य-जाति ही उठ जायगी, अत. यह आदर्श गलत है। पर इस तरह की दलील पेश करनेवालों के दिमाग में नीति नियम और आदर्श का भेद स्पष्ट नहीं है।

ब्रह्मचर्य कोई उपदेश अथवा नियम नहीं, वह तो आदर्श अथवा आदर्श की शर्तों में से एक है। आदर्श तो तभी आदर्श कहा जा सकता है जब उसकी प्राप्ति कल्पना-द्वारा ही सम्भव हो, जब उसकी प्राप्ति अनन्त की 'आड़' में छिपी हो। और इसलिए उसके पास जाने की संभावना भी अनंत है। यदि आदर्श प्राप्त हो जाये, अथवा हम उसकी प्राप्ति की कल्पना भी कर सकें, तो वह आदर्श ही नहीं रहा।

पृथ्वी पर परमात्मा के राज्य की अर्थात् स्वर्ग की स्थापना करने का ईसा का आदर्श ऐसा ही था और पुराने पैगम्बरों ने इसकी भविष्यवाणी पहिले ही कर दी थी, जब उन्होंने कहा था कि वह समय आ रहा है, जब प्रत्येक मनुष्य को ईश्वर-ज्ञान दिया जायेगा। वह समय तेज़ी से आ रहा है, जब लोगों को अपनी तलवारें तोड़कर उनको हल और अपने भालों को फसल काटने की हँसिया में बदल डालना पड़ेगा; जब शेर और बकरी एक घाट पर पानी पीयेंगे और प्राणिमात्र एकमात्र प्रेम के बन्धन में बँध जायेंगे। मानव-जीवन का समस्त उद्देश्य ही इस अन्तिम आदर्श की ओर प्रगति करना है। अतः इस उच्च आदर्श की पूर्णता की तरफ हमारा क़दम बढ़ाने और ब्रह्मचर्य को उस आदर्श का एक अङ्ग मानकर चलने से जीवन का विनाश सम्भव नहीं, बल्कि इसके विपरीत बात तो यही ठीक है कि इस आदर्श का अभाव ही हमारी प्रगति के लिए हानिकारक और इसी कारण सच्चे जीवन के लिए घातक होगा।

ब्रह्मचर्य-धर्म का पालन करने के लिए यदि शक्ति-भर यत्न करें और जीवन-कलह को छोड़ कर यदि हम मित्र-शत्रु, प्राणी-मात्र के प्रति प्रेम-धर्म के आदेश के अनुसार रहने लग जायें, तो क्या मनुष्य-जाति नष्ट हो जायगी? प्रेम-धर्म के पालन से मनुष्य-जाति के विनाश का सन्देह करने के समान ही ब्रह्मचर्य के पालन से मनुष्य-जाति का विनाश होने की शका करना है। ऐसी शकायें उन्हीं लोगों के चित्त में पैदा होती हैं, जो उन दो उपायों के बीच का भेद नहीं समझ पाते हैं, जो कि नीति के मार्ग-दर्शक हैं।

जिस प्रकार पथिक को रास्ता बताने के दो मार्ग होते हैं, उसी प्रकार सत्य को शोध करनेवाले के लिए भी नैतिक जीवन का मार्ग दिखानेवाले केवल दो ही उपाय हैं। एक उपाय के द्वारा पथिक को उसके रास्ते में मिलनेवाले चिन्हों और निशानों की सूचना दी जाती है, जिनको देखकर वह अपना रास्ता ढूँढ़ता चला जाये, और दूसरे के द्वारा उसको अपने पासवाले दिशा-दर्शक कम्पास की भाषा में रास्ता समझाया जाता है।

नैतिक मार्ग-दर्शक पहले उपाय के अनुसार मनुष्य को बाहरी नियम बताते हैं। उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं, इसका साधारण ज्ञान दिया जाता है—मसलन् सत्य का पालन कर, चोरी मत कर, किसी प्राणी की हत्या न कर, मोहताजों को दान दिया कर, शरीर को साफ़ सुथरा रखा कर ईश्वर-प्रार्थना किया कर, शराब कभी न पी, इत्यादि, इत्यादि। धर्म के ये बाहरी नीति-नियम हैं और

किसी न किसी रूप में ये प्रत्येक धर्म में पाये जाते हैं, चाहे वह सनातन वैदिक धर्म हो, या बौद्ध धर्म हो, यहूदी धर्म हो या पादरियोंका धर्म (जो ख्वामख्वाह ईसाई मजहब कहा जाता है ) हो।

और मनुष्य को नीति की ओर ले जाने का दूसरा उपाय वह है, जो उस पूर्णता की ओर इशारा करता है, जिसे आदमी कभी प्राप्त ही नहीं कर सकता। हाँ, उसके 'हृदय' में यह आकांक्षा जरूर रहती है कि वह इस पूर्णता को प्राप्त करे। एक आदर्श बता दिया जाता है, उसको देखकर मनुष्य अपनी कमजोरी या अपूर्णता का अन्दाज लगा सकता है और उसे दूर करने का प्रयत्न करता रहता है।

"मन, वचन, कर्म से ईश्वर की भक्ति कर और दूसरे को अपने निज के समान प्यार कर।" "अपने स्वर्गीय पिता के समान पूर्ण बन।" यह है ईसा का उपदेश।

आदर्श पूर्णता से हम कितने दूर हैं, इसका ठीक-ठीक ज्ञान हो जाने के ही माने हैं कि हम ईसा के उपदेशों का पालन कहाँ तक कर रहे हैं? ( मनुष्य यह नहीं देख सकता कि इस आदर्श के कितने नजदीक तक मैं पहुँचा हूँ; पर वह यह जरूर देख सकता है कि मैं उससे अभी कितनी दूर हूँ ? )

बाह्य नियमों का जो मनुष्य पालन करता है, वह उस मनुष्य के समान है, जो खम्भे पर लगी हुई लालटेन के प्रकाश में खड़ा हो। वह प्रकाश में खड़ा है, प्रकाश उसके चारों ओर है, पर

उसके आगे बढने के लिये कोई मार्ग नहीं है। ईसा के उपदेशों पर जिसका विश्वास है, वह उस मनुष्य के समान है, जिसके आगे-आगे लालटेन चलती है। प्रकाश हमेशा उसके सामने ही रहता है और उसे बराबर अपना अनुसरण करते हुए आगे बढते जाने की प्रेरणा करता रहता है। वह बराबर नये-नये दृश्यों को प्रकाशित कर उनकी ओर मनुष्य को आकर्षित करता रहता है।

'फारिसी' इसलिए परमात्मा को धन्यवाद देता है कि वह उस धर्म-विभाग का पूर्ण पालन करता है। उस धनिक युवक ने भी अपने बचपन से सम्पूर्ण नियमों का पालन किया था, किन्तु वह यह नहीं जानता कि उसके अन्दर क्या कमी है ? यह स्वाभाविक भी है। उनके सामने ऐसी कोई चीज न थी, जो उनको आगे बढ़ने की प्रेरणा करे। दान दिये जाते, 'सबाथ' का पालन होता, माता-पिता का सम्मान किया जाता। व्यभिचार, चोरी और रक्तपात से बचा जाता। और क्या चाहिए!

पर जो ईसाई आदर्श में विश्वास करता है, उसकी बात दूसरी है। एक सीढ़ी पर चढ़ते ही दूसरी पर पैर रखने की आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है, दूसरी पर पहुँचते ही तीसरी सीढ़ी दीखने लग जाती है। इस तरह वह आगे ही आगे बढ़ता जाता है। उसकी प्रगति का क्रम अनन्त है।

ईसा के आदेशों में विश्वास करनेवाला सदा अपनी अपूर्णता को देखता रहता है। पीछे की ओर मुड़कर वह यह नहीं

देखता कि मैं कितनी दूर आया ? बस, वह तो यही देखता रहता है कि मुझे और कितनी दूर जाना है ?

ईसा के उपदेशों में यही विशेषता है, जो अन्य धर्म-मार्गों में नहीं पायी जाती। भेद आदर्श का नहीं बल्कि पथप्रदर्शक रीति-नीति का है।

ईसा ने जीवन की कोई व्याख्या नहीं की। उसने विवाह वा अन्य किसी प्रकार की—किसी संस्था की—स्थापना नहीं की। पर मनुष्यों ने उसके उपदेशों की विशेषताओं को नहीं देखा; केवल बाहरी नियमों के पालन में अटके रह गये। 'फ़ारिसी, की भाँति वे यह समाधान ढूँढने लगे कि हम उसके तमाम आदेशों का पालन करते हैं। इस धुन में वे ईसा के सच्चे आशय का दर्शन न कर पाये। उसके शब्दों को पकड़-पकड़ कर किन्तु उसके उपदेशों के हार्द को खो-खोकर, उन्होंने बाह्य नियमों की एक शृङ्खला बना ली, जिसे वे गिरजे के सिद्धान्त ( Church Doctrines) कहने लगे। इन नियमों ने ईसा के आदर्श के सच्चे सिद्धान्तों को अलग हटाकर अपना ही सिक्का जमा लिया।

ईसा के आदर्श उपदेशों के स्थान पर और उसके उद्देश के हार्द के विपरीत इन गिरजा-सिद्धान्तों ने, जो अपने को ख्वाम-ख्वाह ईसा के बतलाते हैं। जीवन के तमाम प्रसङ्गों पर अपने नियमोपनियम बना लिये। सरकार, कानून, गिरजाघर और पूजा के सम्बन्ध में ये नियम बनाये गये हैं। विवाह-विषयक भी कुछ नियम हैं। ईसा ने कभी विवाह-संस्था की स्थापना नहीं

की। बल्कि बाहरी नियमोपनियम के अनुसार तो वह इसके खिलाफ भी थे। (अपनी पत्नी को छोड़कर मेरा अनुगामी बन), परन्तु इसकी कुछ भी परवाह न कर अपने को ख्वाम-ख्वाह ईसाई कहनेवाले गिरजा-सिद्धान्तों ने विवाह को ईसाई-संस्था करार दे दिया, अर्थात् उन्होंने उन बाह्य नियमों को गढ़ लिया, जिनके अनुसार एक ईसाई के लिए वैषयिक प्रेम, जैसा कि वे प्रतिपादन करते हैं, पूर्णतया पाप-रहित और जायज संस्कार हो जाता है।

यद्यपि स्वयं ईसा के उपदेशों के अनुसार विवाह एक ईसाई-संस्था नहीं है, तथापि अब बात यह हो गयी है कि परली पार पहुँचने के उपाय सोचने के पहले ही मनुष्य इस किनारे को छोड़ चुके हैं। बात यह है कि विवाह-विषयक इस पादरीशाही परिभाषा में वे विश्वास नहीं करते। वे जानते हैं कि ईसाई सिद्धान्तों में इसे कहीं स्थान ही नहीं है। दूसरे वे ईसा के पूर्ण ब्रह्मचर्य-विषयक आदर्श का भी दर्शन नहीं कर पाये हैं। इस लिए विवाह के सम्बन्ध में उन्हें कोई निश्चित मार्ग-प्रदर्शक ही नहीं मिलता।

यहूदी, इस्लामी, लामा-पन्थी आदि लोगों में, जोकि ईसाई-धर्म की अपेक्षा कहीं निकृष्ट धर्म-सिद्धान्तों को मानते हैं, और जिनमें विवाह-विषयक कड़े बाह्य नियम वर्तमान हैं, पारिवारिक और वैवाहिक निष्ठा ईसाई कहे जानेवालों की अपेक्षा कहीं अधिक मजबूत है। इन लोगों में दाश्तायें रक्खी जाती हैं, एक

पुरुष की कई पत्नियाँ होती हैं, एक स्त्री के कई पति होते हैं, यह सब होता है। पर इसकी भी उनमें सीमा है। किन्तु हम लोगों में (ईसाइयों में) अधमता की कोई हद ही नहीं। दाश्तायें रक्खी जाती हैं बहु-पत्नीत्व है, बहु-पतित्व है और वह असीम है। और सबसे भारी आश्चर्य यह है कि एक-पतित्व अथवा एक-पत्नीत्व की ओट में यह सब हो रहा है।

इसका कारण यही है कि ये पादरी लोग केवल धन के लिए उन जुड़े हुए लोगों पर एक ऐसा संस्कार करते हैं, जिसको पादरी-शाही विवाह कहा जाता है। इसलिए कि लोग अपने को धोखा देकर यह ख़याल करने लग जायें कि वे लोग एक-पत्नी-व्रत या एक-पतिव्रत का पालन कर रहे हैं।

न तो आज तक कभी ईसाई विवाह हुआ है, और न कभी हो ही सकता है। † ईसाई पूजा, गिरजा के ईसाई शिक्षक या ईसाई पिता, ईसाई जायदाद, ईसाई फ़ौज, ईसाई अदालतें और ईसाई सरकारों का अस्तित्व जिस प्रकार एक असम्भव और अनहोनी बात है, ठीक उसी प्रकार ईसाई विवाह भी एक दम असम्भव ‡ है।

ईसा के बाद की कुछ सदियों में होनेवाले ईसाइयों ने इस रहस्य को भली-भाँति जान लिया था।

ईसाई-आदर्श तो यह है—ईश्वर और प्राणीमात्र से प्रेम करो।

---

† मैथ्यू ४, ९–१२, जान ४, २१

‡ मैथ्यू २३, ८–१०

ईश्वर और प्राणीमात्र की सेवा परमार्थ के लिए अपना सर्वस्व त्याग दो। वैषयिक प्रेम और विवाह तो आत्म-सेवा—स्वार्थ—है, इसलिए हर हालत में वह ईश्वर और मनुष्य की सेवा के आदर्श का विरोधी है। अत. ईसाई दृष्टि से वह पतन है, पाप है।

विवाह से मनुष्य अथवा ईश्वर की सेवा में कोई सहायता नहीं पहुँचती, यद्यपि विवाह की इच्छा करनेवालों का हेतु इससे मानव-समाज की सेवा करना भी हो। विवाह करके नये बच्चों को पैदा करने की अपेक्षा उनके लिए यह कहीं अधिक आसान है कि वे भूखों मरनेवाले उन लाखों मनुष्यों को किसी उपयोगी उद्यम में लगा कर बचावें। आध्यात्मिक भोजन की तो बात दूर है, पर उनके शारीरिक पोषण के लिए भोजन प्राप्त करने में उनकी सहायता करें।

एक सच्चा ईसाई तो विवाह को बिना किसी प्रकार का पाप समझे तभी वैवाहिक बन्धन में अपने को बाँध सकता है, जबकि वह यह देख ले कि अभी संसार में जितने भी बच्चे हैं, सबको भरपेट अन्न मिल रहा है।

मनुष्य ईसा के उपदेशों को मानने से भले ही इन्कार करें; हाँ, भले ही मनुष्य उन सिद्धान्तों को न मानें, जो हमारे जीवन की तह तक पहुँच गये हैं और जिनपर हमारी तमाम नीतिमत्ता निर्भर है। पर यदि एक बार अंगीकार कर लें। तो इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि वे हमें सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श की ओर ले जा रहे हैं।

बाइबल में यह साफ़-साफ़ शब्दों में कहा है, जिसका ग़लत अर्थ ही नहीं किया जा सकता, कि पहले तो मनुष्य को दूसरी पत्नी ग्रहण करने के लिए अपनी पहली पत्नी को नहीं छोड़ना चाहिये। * दूसरे, सर्वसाधारण पुरुष के लिए चाहे वह विवाहित हो चाहे अविवाहित, यह पाप है कि वह स्त्री को अपनी भोग-सामग्री समझे। तीसरे, अविवाहित मनुष्य के लिए अच्छा यही है कि वह कभी शादी न करे, । अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करे।

कई लोगों को ये विचार विचित्र और विपरीत मालूम होंगे, और सचमुच यह विपरीत हैं भी। किन्तु अपने प्रति नहीं, हमारे वर्तमान जीवन-क्रम के एकदम विपरीत हैं। तब अपने आप । एक सवाल खड़ा होता है कि फिर उचित क्या है ? ये विचार, या हम लाखों-करोड़ों का और मेरा भी प्रत्यक्ष जीवन ? ये विचार और भाव उस समय मेरे दिल में बड़े जोरों से उठ रहे थे, जब मैं धीरे-धीरे इन निर्णयों की ओर आकर्षित हो रहा था। मैंने यह कभी ख़याल भी न किया था कि मेरे विचार मुझे उन नतीजों पर ले जायँगे, जिनपर कि मैं पहुँचा हूँ। इन नतीजों ने तो मुझे चौंका दिया। मैं इनपर विश्वास भी करना नहीं चाहता था। पर यह असम्भव था। हमारे वर्तमान जीवन-क्रम के वे चाहे कितने ही विपरीत हों, स्वयं मेरे पूर्व-

* मैथ्यू अध्याय पाँचवाँ, वचन २८, २९, ३१, ३२ और अध्याय उन्नीस के वचन ८, १०, १२

जीवन और लाखों से भी वे चाहे बहुत विपरीत हों, परन्तु मैं तो उनपर विश्वास करने के लिए मजबूर होगया हूँ।

लोग कहेंगे—"ये तो सिद्धान्त की बातें हैं। भले ही वे सच्ची हों, तो भी हैं वे आखिर ईसा के उपदेश। वे उन्हीं लोगों पर लागू हो सकते हैं, जो कहते हैं कि हम उनमें विश्वास करते हैं। पर जीवन तो जीवन ठहरा। यह तो आप पहले ही कह चुके हैं कि ईसा का बताया यह आदर्श अप्राप्य है। फिर भी हम केवल इसी हवाई आदर्श के भरोसे संसार में लोगों को एक ऐसे वादग्रस्त प्रश्न के बीच धार में नहीं छोड़ सकते, जो कि उन्हें बड़े-बड़े सकटों की ओर ले जा सकती है।

एक युवक और भावुक व्यक्ति इस आदर्श के द्वारा पहले भले ही आकर्षित हो जाये, पर वह आखिर तक नहीं टिक सकता। उसका पतन अवश्यम्भावी है। फिर वह किसी नियम और उपदेश की परवा नहीं करेगा। बस, सीधा नीचे की ओर दौड़ता चला जायगा।

ईसा का आदर्श तो अप्राप्य है। हम उसतक नहीं पहुँच सकते। वह संसार में हमारा हाथ पकड़कर नहीं ले जा सकता। भले ही हम उसके विषय में खूब लम्बी-चौड़ी बातें करें, उसके स्वप्न देखें; पर यह प्रत्यक्ष जीवन के लिए एकदम निरुपयोगी है, अतएव छोड़ देने योग्य है।

हमें आदर्श की नहीं, मार्ग-दर्शक की आवश्यकता है, जो हमारी शक्ति का खयाल कर हमें धीरे-धीरे आगे-बढ़ाता हुआ ले

चले; जो हमारे समाज की सर्वसाधारण नैतिक अवस्था के अनुकूल हो।

यदि ऐसा है तो पादरीशाही विवाह या अप्रामाणिक विवाह, जिसमें दोनों में से किसी एक का ( हमारे समाज में सामान्यतः पुरुष का ) दूसरी औरतों के साथ सम्बन्ध रह चुका हो, सिविल विवाह अथवा वह विवाह जिसमें तलाक की संभावना हो, या नियतकाल की सीमा रखनेवाला जापानी विवाह, या इससे भी आगे बढ़कर नित्य नूतन विवाह ही क्यों न किया जाये, क्यों कि कुछ लोगों के ख़याल में खुल्लमखुल्ला गलियों से होनेवाली अनीति से तो यह किसी प्रकार अच्छा है।

दिक़्कत यही है कि अपनी कमज़ोरी से मेल बैठाने के लिए आदर्श को ढीला करते ही यह नहीं सूझ पड़ता कि कहाँ ठहरा जाय ?

पर यह दलील शुरू से ग़लत है। पहले तो यही ख़याल ग़लत है कि अनन्त पूर्णतावाला आदर्श जीवन में हमारा मार्ग-दर्शक नहीं हो सकता। दूसरे यह सोचना भी ग़लत है कि या तो मुझे निराश हो यह कह देना चाहिए, कि आदर्श हद से ज्यादा ऊँचा है; इसलिए इसे मुझे छोड़ देना चाहिए, या मुझे उस आदर्श को अपनी कमज़ोरी से मेल बैठाने के लिए नीचे लाना चाहिए, क्योंकि अपनी कमज़ोरी के कारण मैं जहाँ हूँ वहीं रहना चाहता हूँ।

यदि एक जहाज़ का कप्तान कहे कि मैं कम्पास-द्वारा बतायी

जानेवाली दिशा में नहीं जा सकता, इसलिए मै उसे उठाकर समुद्र में डाल दूँगा, उसकी तरफ देखना ही बन्द कर दूँगा, ( अर्थात् आदर्श को कतई छोड़ दूँगा ) या मै कम्पास की सुई को पकड़कर उस दिशा में बाँध दूँगा, जिधर मेरा जहाज जा रहा है ( अर्थात् अपनी कमजोरी तक आदर्श को नीचे खींच लूँगा ), तो निःसन्देह बेवकूफ कहा जायगा।

ईसा का बताया आदर्श न तो एक स्वप्न है और न कोई काव्यमय उपदेश। वह तो मनुष्यों को नीतिमय जीवन की ओर ले जानेवाला एक नितान्त आवश्यक मार्गदर्शक है, जो सबके लिए एकसा उपयोगी और प्राप्य है, जैसा कि नाविकों के लिए वह कम्पास होता है। पर नाविक का अपने कम्पास अर्थात् दिशा-दर्शक-यन्त्र में विश्वास करना जितना आवश्यक है, उतना ही मनुष्य का इन उपदेशों में विश्वास करना भी है।

मनुष्य चाहे किसी परिस्थिति में क्यों न हो, ईसा के आदर्श का उपदेश उसे यह निश्चित रूप से बताने के लिए सदा उपयोगी होगा कि उस मनुष्य को क्या-क्या बातें नहीं करनी चाहिएँ? पर चाहिए उस उपदेश में पूरा विश्वास, अनन्य श्रद्धा। जिस प्रकार जहाज़ का मल्लाह या कप्तान उस कम्पास को छोड़ दायें-बायें आनेवाली और किसी चीज़ का ख़याल नहीं करता, उसी प्रकार मनुष्य को भी इन उपदेशों मे पूरी श्रद्धा रखनी चाहिए।

मनुष्य को यह जान लेना चाहिए कि ईसा के उपदेशों के

अनुसार हमें किस तरह चलना चाहिए और इसके लिए अपनी वर्तमान अवस्था का ज्ञान प्राप्त कर लेना परम आवश्यक है। बतलाये हुए आदर्श से हम कितनी दूर हैं, यह जानने से मनुष्य को कभी डरना न चाहिए। मनुष्य किसी भी सतह पर या किसी भी हालत में क्यों न हो, वहाँ से वह बराबर आदर्श की तरफ बढ़ सकता है। साथ ही वह कितना ही आगे क्यों न बढ़ जाये, वह कभी यह नहीं कह सकता कि अब मैं ठेठ तक पहुँच गया या अब आगे बढ़ने के लिए कोई मार्ग ही न रहा।

आम तौर से ईसाई आदर्श के प्रति और ख़ासकर ब्रह्मचर्य के प्रति मनुष्य की यह वृत्ति होनी चाहिए। एक अत्यन्त निर्दोष बालक से लेकर असंयमी और पतित से पतित विवाहित जीवन-वाले मनुष्य की कल्पना कीजिए। और आप देखेंगे कि इन दोनों और दो में से बीच की प्रत्येक सीढ़ी पर खड़े हुए आदमी के लिए ईसाई आदर्श ठीक-ठीक और निश्चित मार्ग बतानेवाला सिद्ध होगा।

एक पवित्र लड़के या लड़की को क्या करना चाहिए?

अपने को प्रलोभनों से दूर और पवित्र रखना चाहिए। और ईश्वर और मनुष्य की सेवा पूर्णतया करने के योग्य बनाने के लिये उन्हें चाहिए कि वे अधिकाधिक पवित्र बनने की कोशिश करें, मानसिक पवित्रता को भी प्राप्त करने की कोशिश करें।

वे युवक या युवती क्या करें, जो प्रलोभनों के शिकार बन चुके हैं, जो या तो प्रेम के व्यर्थ के चक्र में पड़े हैं या किसी

ख़ास व्यक्ति के प्रेम-पाश में बँधकर एक हद तक ईश्वर और मानव-सेवा के आदर्श का पालन करने के अयोग्य हो गये हैं ?

वे भी वही करें जो शुद्ध हृदय के युवक-युवतियों के लिए कहा गया है। वे अपने को पाप मे पड़ने से बचावें। पतन उनको प्रलोभन से छुड़ा नहीं सकता, बल्कि वह तो उन्हें प्रलोभनों में और भी जकड़ देगा। उन्हें तो अधिकाधिक पवित्रता की प्राप्ति और रक्षा के लिए यत्न करना चाहिए, जिससे वे ईश्वर और मनुष्य की सेवा के अधिक योग्य बनें।

वे क्या करें, जिन्होंने प्रलोभनों का प्रतिकार नहीं किया और गिर गये हैं ?

उनके पतन को उचित या आनन्दमय मत समझिए (जैसा कि विवाह-सस्कार के बाद आजकल समझा जाता है), न उसे एक नैमित्तिक सुख समझिए, जिसका उपभोग बार-बार किया जा सकता हो। पतन के बाद और किसी नीचे दर्जे के व्यक्ति के साथ सम्बन्ध होने पर उसे एक विपत्ति भी न समझो। बल्कि इस पहले पतन को एक मात्र पतन एवं अटूट और सच्चा विवाह-बन्धन ही समझो।

यह विवाह-बन्धन, जिसका फल सन्तानोपत्ति होता है, उन व्यक्तियों को ईश्वर और मनुष्य की सेवा के अधिक परिमित क्षेत्र के बन्धन में बाँध देता है। विवाह के पहले वे मनुष्य और ईश्वर की सेवा स्वयं प्रत्यक्ष रूप से और कई प्रकार से कर सकते थे। विवाह-बन्धन उनके कार्यों के क्षेत्र को सीमित कर देता है

और उनसे अपेक्षा रखता है कि वे अपने बच्चों के—ईश्वर और मनुष्य के भावी सेवकों के—संवर्धन-शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध करें।

वे विवाहित स्त्री-पुरुष, जो अपने बच्चों के संवर्धन और शिक्षा का काम निबाहकर अपने परिमित क्षेत्र के कर्तव्यों का पालन कर रहे हैं, क्या करें ?

वही, जो मै पहले कह चुका हूँ। दोनों मिलकर अपने आपको प्रलोभनों से बचावें। ईश्वर और मनुष्य की साधारण और विशेष सेवा में रुकावटें डालनेवाले पाप से अपने को बचावें और शुद्ध करें। वैषयिक प्रेम को शुद्ध—भाई-बहन के—प्रेम में परिणत कर दें।

यह सत्य नहीं कि ईसा के आदर्श के ऊँचे, पूर्ण और दुरूह होने के कारण हमें अपने मार्ग में आगे बढ़ने में कोई सहायता नहीं मिलती। हमें उससे प्रेरणा और स्फूर्ति इसलिए नहीं मिलती कि हम अपने प्रति असत्य आचरण करके अपने आपको धोखा देते हैं। हम अपने आपको समझाते हैं कि हमारे लिए अधिक व्यावहारिक नियमों का होना जरूरी है, क्योंकि ऐसा न होने पर हम अपने आदर्श से गिरकर पाप में पड़ जायँगे। इसके स्पष्ट मानी यह नहीं कि ईसा का आदर्श बहुत ऊँचा है, बल्कि हमारा मतलब यह है कि हम उसमें विश्वास ही नहीं करते और न उसके अनुसार अपने जीवन का नियमन ही करना चाहते हैं।

एक बार गिरने पर यदि हम यह कहें कि हमने जीवन को

शिथिल कर दिया है, तो उसके मानी तो यही हैं कि हमने इस बात को पहले से तय कर दिया है कि समाज में हमसे निचली श्रेणी के व्यक्ति के साथ सम्बन्ध होना पाप नहीं, एक दिल-बहलाव का साधन, एक विकार-दर्शन मात्र है, जिसपर हम विवाह की मुहर लगा देना नहीं चाहते। इसके विपरीत, यदि हम यह समझ लें कि ऐसा पतन होना एक पाप है और इसका प्रायश्चित्त अटूट विवाह-बंधन और तदनुगत बच्चों के पालन-पोषण-सम्बन्धी कर्त्तव्यों की दीक्षा लेने से ही हो सकता है, तब वह पतन हमारे लिए विकार-वर्धक नहीं होगा।

फर्ज कीजिए कि एक किसान जो अनाज बोना सीखना चाहता है, एक खेत को बुरी तरह बोता है, और उसे छोड़ देता है व दूसरे को, तीसरे को और चौथे को भी इसी तरह बो-बोकर छोड़ देता है और अन्त में जो जमीन अच्छी बोयी हुई है उसी को अपनी कहने लग जाता है तो सोचिए, वह कितना नुकसान करेगा? वह कभी अच्छी तरह बोना-काटना नहीं सीख सकता। केवल ब्रह्मचर्य को ही आदर्श समझिए। इस आदर्श से किसी का जब कभी और जिस किसी के साथ पतन हो, बस, उसी समय उस व्यक्ति के साथ विवाह कर उसे जीवन का साथी बना लिया जाये। तब यह आसानी से समझ में आ जायगा कि ईसा केवल मार्ग-दर्शक ही नहीं बल्कि एक-मात्र मार्ग-दर्शक है।

लोग कहते हैं, मनुष्य स्वभावतः अपूर्ण है। उसे वही काम दिया जाये, जो उसकी शक्ति के अनुसार हो। इसके मानी तो

यही हुए कि मेरा हाथ कमजोर होने से मै सीधी रेखा नहीं खींच सकता, इसलिए सीधी रेखा खींचने के लिए मेरे सामने टेढ़ी या टूटी लकीर का ही नमूना रखा जाय।

पर बात यह है कि मेरा हाथ जितना ही कमजोर हो, बस, उतना ही पूर्ण नमूना मेरे सामने होना आवश्यक है।

ईसा के उस पूर्ण आदर्श का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर हम अज्ञानी की भाँति काम करके बाहरी नियम नहीं बना सकते। ईसाई आदर्श के ज्ञान का उद्घाटन मनुष्य के लिए इसीलिए किया गया कि वह उसकी मौजूदा परिस्थिति में उसके लिए मार्ग-दर्शन हो। मनुष्य-जाति अब बाहरी धार्मिक नियमों के बन्धनों के परे चली गयी है। अब उनमें कोई विश्वास नहीं कर सकता।

ईसा के उपदेश ही एक ऐसी चीज हैं, जो मनुष्य-जाति को मार्ग दिखा सकते हैं। अतः इनके स्थान पर हमें अन्य बाहरी नियम न गढ़ने चाहिएँ। हमें तो इसी आदर्श को अपने सामने रखकर उसमें श्रद्धा रखनी चाहिए।

किनारे के नजदीक से होकर चलनेवाले जहाज के लिए यह भले ही कहा जा सकता है कि उस सीधी-ऊँची चट्टान के नजदीक से होकर चलो, उस अन्तरीप के पास से उस मीनार के बायें होकर चले चलो। पर अब तो हमने ज़मीन को बहुत दूर पीछे छोड़ दिया। अब तो नक्षत्रों और दिशा-दर्शक-यंत्र की सहायता से ही हमें अपना रास्ता ढूँढना होगा और ये दोनों हमारे पास मौजूद हैं।

: २ :

# डायना

'क्रूज़र सोनाटा' तथा उसके 'उपसंहार' + के विषय में मुझे कई पत्र मिले हैं जिनसे पता चलता है कि स्त्री और पुरुषों के पारस्परिक सम्बन्ध मे सुधार करने की आवश्यकता को केवल मैं ही नहीं, बल्कि कितने ही विचारशील स्त्री-पुरुष महसूस करते हैं। उनकी आवाज़ उन लोगों के शोर-गुल मे डूब जाती है, जो इसके विपरीत विचार रखते हैं और वर्तमान अवस्था जिनके विकारों के अधिक अनुकूल है। इन पत्रों में एक के साथ, जो मुझे गत ७ अक्तूबर १८६० ई० को मिला, एक छोटी-सी पुस्तिका भी है, जिसका नाम 'डायना' है।

पत्र इस प्रकार है—

हम लोग आपको 'डायना' नामक एक छोटी-सी पुस्तिका भेज रहे हैं। स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध पर यह एक ऐसा निबन्ध है, जो मनोविज्ञान और शरीर-विज्ञान के आधार पर लिखा गया है। जबसे आपकी 'क्रूज़र सोनाटा' नामक कहानी अमेरिका में प्रकाशित हुई है, तब से कई लोग कहने लगे हैं कि 'डायना' उन सब सिद्धान्तों का खुलासा कर देती है, जो टॉल्स्टॉय ने अपनी उपर्युक्त कहानी में व्यक्त किये हैं। अतः हम यह पुस्तिका आपकी सेवा में इसलिए भेज रहे हैं कि

---

+ टाल्स्टाय की एक कहानी

आप ही इस बात का स्वयं निर्णय करें कि यह कथन कहाँ तक ठीक है? आपकी हार्दिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

भवदीय
( हस्ताक्षर ) बर्न्स कम्पनी, न्यूयार्क

इसके पहले मुझे फ्रान्स से श्रीमती एंजल फ्रेंकाइस का पत्र और उनकी एक पुस्तिका भी मिली थी। उन्होंने अपने पत्र में दो ऐसी संस्थाओं का जिक्र किया था, जिनका उद्देश्य स्त्री-पुरुषों के पारस्परिक सम्बन्ध को अधिक पवित्र रूप देना है। इनमें से एक सस्था फ्रान्स में और दूसरी इङ्गलैण्ड में है। श्रीमती एजल फ्रेंकाइस के पत्र में भी वही विचार व्यक्त किये गये हैं, जो 'डायना' में हैं, पर उतनी स्पष्टता के साथ नहीं। उनमें कुछ अध्यात्मवाद की झलक है।

'डायना' में जो कल्पनायें और विचार प्रकट किये गये हैं, उनका आधार ईसाई आदर्श पर स्थित नहीं है। मूर्त्ति-पूजक और प्लेटो के जीवन-सिद्धान्तों के आधार पर वह लिखी गयी है! पर फिर भी उसकी विचार इतने नवीन और आनन्द-वर्धक हैं, और हमारे समाज के विवाहित तथा अविवाहित जीवन की वर्त्तमान नैतिक शिथिलता की जड़ में जो अविवेक है, उसे इतनी अच्छी तरह प्रकट करते हैं कि उसे पाठकों के सामने उपस्थित करने को मेरा जी चाहता है।

पुस्तिका पर आदर्श-वाक्य यह लिखा है—'वे दोनों शरीरतः

एक हो जायँगे। और उसमें व्यक्त विचारों का सार इस तरह है—

स्त्री और पुरुषों में केवल शारीरिक भेद ही नहीं है। अन्य बातों में तथा उनके नैतिक गुणों में भी भेद है। जो पुरुषों में पौरुष और स्त्रियों में रमणीत्व कहे जाते हैं। उनमें पारस्परिक आकर्षण शारीरिक सम्मिलन के लिए ही नहीं, बल्कि इन विपरीत गुणों के कारण भी होता है। स्त्री, पुरुष की तरफ़ झुकती है, और पुरुष स्त्री की ओर आकर्षित होता है। प्रत्येक दूसरे की प्राप्ति द्वारा अपने को पूर्ण करने की कोशिश करता है। अतः यह आकर्षण शारीरिक तथा आध्यात्मिक सम्मिलिन के लिए एक-सा झुकाव रखता है। यह झुकाव एक ही शक्ति के द्विविध अङ्ग हैं और वे एक दूसरे पर ऐसे आश्रित हैं कि एक अङ्ग की तृप्ति से दूसरा अङ्ग कमज़ोर हो जाता है। यदि आध्यात्मिक आकांक्षा की तृप्ति की ओर ध्यान दिया जाता है, तो शारीरिक आकांक्षा कमजोर हो जाती है या बिलकुल बुझ जाती है। और उसी प्रकार शारीरिक आकांक्षा की पूर्त्ति आध्यात्मिक आकांक्षा को कमजोर या नष्ट कर देती है। अत: यह पुरुष-स्त्री का आकर्षण केवल शारीरिक ही नहीं होता। जिसका परिणाम सन्तानोत्पत्ति है। वह दोनों प्रकार का होता है—शारीरिक और आध्यात्मिक। हाँ, वह पूर्णतया एकदेशीय भी बनाया जा सकता है—पूर्णतया पाशविक अथवा शारीरिक अर्थात् जिसका परिणाम सन्तानोत्पत्ति हो या नितान्त आध्यात्मिक अर्थात् मानसिक।

इन दोनों के बीच कई सीढ़ियाँ हैं, जिनमें भी उसका प्रादुर्भाव हो सकता है। पर स्त्री-पुरुषों को एक दूसरे की ओर बढ़ते समय किस सीढ़ी पर अपनी गति को रोक देना चाहिए ? यह तो उनके व्यक्तिगत विचारों पर निर्भर है । वे जिस सीढ़ी को उचित, अच्छी और वांछनीय समझें वहीं ठहर सकते हैं। वह सम्भव है या नहीं, इसका यदि निराकरण करना हो, तो हमें छोटे रूस की उस प्रथा को देखना चाहिए, जिसमें विवाह के लिए चुने हुए युवक लड़के-लड़की बरसों तक साथ रखे जाते हैं और फिर भी वे अपने कौमार्य का भङ्ग नहीं करते।

स्त्री और पुरुष प्रायः उसी सीढ़ी पर पूर्ण आनन्द मानते हैं, जिसे वे अच्छी, उचित और वांछनीय समझते हैं। ये सीढ़ियाँ स्पष्ट ही प्रत्येक मनुष्य के लिए भिन्न-भिन्न होंगी। पर सवाल यह है कि पारस्परिक सम्मिलन की कोई ऐसी एक सीढ़ी भी हो सकती है, जिसको प्राप्त करने पर सभी एक-से और ज्यादा से ज्यादा सन्तोष को प्राप्त कर सकें—चाहे शारीरिक सम्मिलन हो, या आध्यात्मिक ? इसका उत्तर तो साफ़ और स्पष्ट है। पर वह हमारी सामाजिक धारणा के विपरीत है। उत्तर यह कि वह सीढ़ी शारीरिक अथवा इन्द्रिय-जन्य आनन्द के जितनी ही नज़दीक होगी, उतनी ही वासना बढ़ेगी और वासना जितनी ही अधिक बढ़ेगी हम सन्तोष से उतने ही दूर हटते जायँगे।

इसके विपरीत हम जितने ही अतीन्द्रिय ( आध्यात्मिक ) सुख की ओर बढ़ेंगे, उतनी ही वासना नष्ट होगी और हमारा

समाधान भी स्थायी होगा। वह सन्तोष होगा। इन्द्रिय-सुख जीवन-शक्ति के लिए विनाशक और अतीन्द्रिय सुख, शान्ति, आनन्द और बल बढ़ानेवाला है।[1]

पुस्तक का लेखक स्त्री-पुरुषों के शारीरिक एकीकरण को मानव-जीवन के उच्च विकास की एक आवश्यक शर्त मानता है। लेखक का ख़याल है कि विवाह उन तमाम परिपक्व वय के स्त्री-पुरुषों के लिए एक प्राकृतिक और वांछनीय अवस्था है। यह कोई अनिवार्य नहीं कि उनका शारीरिक सम्बन्ध हो ही। वह सम्मिलन केवल आध्यात्मिक ही हो सकता है। विवाहेच्छु स्त्री-पुरुषों की परिस्थिति और प्रवृत्ति तथा इससे भी बढ़कर योग्या-योग्यता के विवेक के अनुसार विवाह या तो शारीरिक या आध्यात्मिक सम्मिलन के नज़दीक पहुँच सकता है। पर यह तो निःसन्देह समझिए कि वह सम्मिलन जितना ही अधिक आध्यात्मिक होगा उतना ही अधिक सन्तोष देनेवाला होगा।

लेखक इस बात को स्वीकार करते हैं कि स्त्री-पुरुषों का पारस्परिक आकर्षण या तो पूर्णतया आध्यात्मिक ही हो सकता है या वैषयिक—शारीरिक। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि स्त्री-पुरुष इसे अपनी इच्छानुसार आध्यात्मिक या वैषयिक क्षेत्र में ले जाने की शक्ति भी रखते हैं। इससे स्पष्ट है कि वे ब्रह्मचर्य की असम्भावना को कबूल नहीं करते। बल्कि वे तो उसे विवाह के पहले और बाद में स्त्री-पुरुषों के स्वास्थ्य के खयाल से अत्यन्त आवश्यक भी मानते हैं।

[1] सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्। —गीता।

लेख में उदाहरणों की भरमार है, जो उसकी मुख्य दलील को शरीर-शास्त्र की जननेन्द्रियों से सम्बन्ध रखनेवाली क्रियाओं के प्रमाणों द्वारा मज़बूत करते हैं। वे उनके शारीरिक आघात-प्रत्याघात का स्पष्ट रूप से वर्णन करते हैं। लेख में इस बात का भी खूब विचार किया गया है कि मनुष्य अपनी इन वैषयिक वृत्तियों पर प्रभुत्व प्रस्थापन कर कहाँ तक उनको प्रेम या सन्तानोत्पत्ति की किसी धारा में छोड़ सकता है? अपने विचारों की पुष्टि करते हुए वे हर्बर्ट स्पेन्सर के इन शब्दों को उद्धृत करते हैं कि "यदि एक नियम मनुष्य के लिए सचमुच कल्याणकर है, तो मनुष्य-स्वभाव अवश्यमेव उसके सामने अपना सिर झुका लेगा, जिससे उसका पालन मनुष्य के लिए आनन्ददायक हो जायेगा।" लेखक बाद में कहते हैं कि इसलिए हमें वर्तमान प्रचलित रूढ़ियों पर इतना अवलम्बित नहीं रहना चाहिए। हमें तो उस स्थिति का ख़याल करना चाहिए, जिसे मनुष्य उज्ज्वल भविष्य में प्राप्त करने जा रहा है।

लेखक अपने तमाम वक्तव्य को इस तरह संक्षेप में प्रदर्शित करते हैं। 'डायना' में वर्णित सिद्धान्त थोड़े में ये हैं कि स्त्री-पुरुषों के बीच दो प्रकार का सम्बन्ध हो सकता है। एक तो शुद्ध प्रेममय और दूसरा सन्तति के लिए। यदि सन्तति की इच्छा न हो, तो यही अच्छा है कि वैषयिक प्रेम को शुद्ध सात्विक प्रेम में परिणत कर दिया जाये। उपर्युक्त सिद्धान्तों पर जब विवेकपूर्वक विचार किया जायेगा, तब मनुष्य की वैषयिकता अपने आप कम

हो जायेगी। साथ ही संयम के लिए पोषक आदतें भी साथ-साथ बनाना शुरू कर दिया जाये, तो मनुष्य कई दुःखों और कष्टों से बच जायगा और उसकी आकांक्षायें भी शान्त हो जायेंगी।

पुस्तिका के अन्त में एलिज़ा बर्न्स का, माता-पिता और शिक्षकों के नाम एक महत्त्वपूर्ण पत्र दिया गया है। इस पत्र में ऐसे प्रश्न पर विचार किया गया है, जो ज़रा बे-परदा है। पर वह उन असख्य युवकों और युवतियों के लिए वास्तव में बड़ा उपयोगी और कल्याणकर है, जो नाना प्रकार के विकारों के पंजे में पड़कर अपने जीवन को बर्बाद कर रहे हैं—जो अज्ञानवश अपनी उत्कृष्ट शक्तियों को प्रतिदिन व्यर्थ नष्ट कर रहे है।

---

# विविध पत्र

## दिनचर्या आदि से

स्त्री-पुरुषों के सहवास के सम्बन्ध में मैंने जहाँ तक हो सका 'क्रूजर सोनेटा' (नाम की पुस्तक) के उपसंहार (Afterword) में अपने विचार भली-भांति प्रकट कर दिये हैं। इस सारे प्रश्न का उत्तर एक शब्द में इस प्रकार दिया जा सकता है—मनुष्य को चाहिए कि वह हमेशा और हर हालत में, चाहे वह विवाहित हो, अथवा अविवाहित, जहाँ तक वह रह सकता हो ब्रह्मचर्य से रहे, जैसा कि ईसा मसीह ने और उनके बाद महात्मा पॉल ने बतलाया है। यदि वह आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कर सकता है, तो इससे अच्छा वह और कुछ कर ही नहीं सकता। परन्तु यदि वह अपने आपको रोक नहीं सकता, अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त करनेमें असमर्थ है, तो उसे चाहिए कि जहाँ तक हो सके, वह अपनी इस निर्बलता के बहुत कम वशीभूत हो, और किसी अवस्था में विषयोपभोग को आनन्द की वस्तु न समझे। मै समझता हूँ, कोई भी गंभीर और सत्यशील प्राणी इस प्रश्न का इससे भिन्न अन्य कोई उत्तर दे ही नहीं सकता, और ऐसे सभी मनुष्य इस उत्तर से सहमत हैं।

× × × ×

दूसरा पत्र 'ऐडल्ट' के सम्पादक के पास से स्वच्छन्द प्रेम (Free love) के सम्बन्ध में आया है। यदि मेरे पास समय

होता, तो इस विषय में मैं अवश्य लिखता। शायद मैं लिखूँगा भी। मुख्य बात तो यह बतला देना है कि इस मामले का सारा दारोमदार, बिना परिणाम को सोचे, यह समझ बैठने में है कि किसमें अधिक से अधिक सुख है। अतिरिक्त लोग उस बात की शिक्षा देते हैं जो पहिले से ही विद्यमान है और जो बहुत ख़राब है। तो फिर ऐसी दशा में जबकि मनुष्य पर कोई नियंत्रण नहीं है, इसके सुधार की सम्भावना कैसे हो सकती है? वास्तव में मैं इस सम्बन्ध में समस्त कानूनी व्यवस्थाओं का विरोधी हूँ और चाहता हूँ कि लोगों को पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी जाये। केवल आदर्श ब्रह्मचर्य का हो, सुख और आनन्द का नहीं।

× × × ×

स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध से, पारस्परिक अनुराग (आसक्ति) से उत्पन्न होनेवाली सारी विपत्तियों का कारण यह है कि हम कामाभिलाषा को आध्यात्मिक जीवन के साथ और—कहते रोमांच होता है—विशुद्ध प्रेम के साथ मिला देते हैं, हम अपनी विवेक-बुद्धि से इस कामाभिलाषा की निन्दा और उसको दबाने का काम नहीं लेते, किन्तु उलटा इसपर आध्यात्मिकता की कलई करते हैं।

× × × ×

यह ऐसी जगह है, जहाँ दोनों छोर मिलते हैं। स्त्री और पुरुषों के बीच के प्रत्येक आकर्षण को विषय-लालसा कहना भारी जड़ता होगी। पर यह अधिक से अधिक आध्यात्मिक

दृष्टि है। यदि प्रेम को हम अच्छी तरह समझना चाहते हैं तो हमें उसमें से उन तमाम बाहरी बातों को निकाल डालना चाहिए जो आध्यात्मिक न हों। तभी हम उसके शुद्ध या यथार्थ स्वरूप को पहचान सकेंगे।

× × ×

कामाभिलाषा का, जो बड़ी से बड़ी विपत्तियों का उद्गम है, हमारे लिए निवारण और नियन्त्रण करना तो दूर रहा, हम उलटा यथाशक्ति अधिक उत्तेजन देते रहते हैं। और इसके बाद यह शिकायत करते हैं कि हमें कष्ट है, हम दुःख पा रहे हैं।

× × ×

केवल शारीरिक सुख की इच्छा से अनेक व्यक्तियों के साथ विषयोपभोग करने से मनुष्य विलासी बन जाता है। विलासिता क्या है? पुरुष अथवा स्त्री में विलासता वह अशान्तिपूर्ण अवस्था है, जिसमें वह उत्सुकतावश एक शराबी की तरह नित्य नवीनता को खोजता फिरता है या खोजती फिरती है। व्यभिचारी, विलासी व्यक्ति अपने को एक बार रोक सकता है, पर शराब-ख़ोर कभी नहीं रोक सकता। शराबख़ोर शराबख़ोर है और व्यभिचारी व्यभिचारी। दोनों में फ़र्क नाम-मात्र को है। थोड़ी-सी भी शिथिलता आने पर विलासी अधम व्यभिचारी बन जाता है।

❀ ❀ ❀

प्रलोभन के साथ झगड़ते समय हम कई बार पहले ही से अपनी विजय की रोचक कल्पना में तल्लीन हो जाते हैं। यह एक

भारी कमजोरी है। ऐसे काम में हम लग जाते हैं, जो हमारी शक्ति से वाहर है, जिसका पूरा करना न करना हमारी शक्ति के अन्दर की वात नहीं। पादरियों की तरह हम पहले ही से अपने-आप से कहने लग जाते हैं, "मैं ब्रह्मचर्य के पालन की प्रतिज्ञा करता हूँ।" इस ब्रह्मचर्य से हमारा इशारा होता है वाहरी ब्रह्मचर्य की ओर। पर यह असम्भव है। क्योंकि पहले तो हम इस वात की कल्पना नहीं कर सकते कि हमें आगे चलकर किन-किन परिस्थितियों में से गुजरना होगा। संभव है, हमें ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़े, जिसमें प्रलोभन का प्रतिकार करना हमारे लिए असम्भव हो। दूसरे, इस तरह की एकाएक प्रतिज्ञा करने से हमें अपने उद्देश की ओर—सर्वोच्च ब्रह्मचर्य के निकट—जाने में कोई सहायता नहीं मिलती; उलटे, भीतर कमजोरी रह जाने के कारण, हमारा पतन अलवत्ता शीघ्र होता है।

पहले तो लोग वाहरी ब्रह्मचर्य को ही अपना उद्देश्य मान लेते हैं। फिर या तो वे संसार को छोड़ देते हैं या स्त्रियों से दूर दूर भागते फिरते हैं। आफॉ के पादरी ऐसा ही करते थे। इतने पर भी जव कामवासना से पिण्ड नहीं छूटता, तव अपनी इन्द्रिय को ही काट डालते थे। पर इन सवसे महत्त्वपूर्ण वात की तरफ उनका ध्यान नहीं जाता था। वासना शरीर का धर्म तो है नहीं। यह तो एक मानसिक वस्तु है। वैषयिकता से वचने के लिए विचार-शुद्धि परमावश्यक है। प्रलोभनों के सामने आने पर जो विकारोद्भव होता है, अन्तर्युद्ध ही उसका उपाय है।

इन्द्रिय-विनाश करना तो उसी सिपाही का सा काम है, जो कहता है कि मैं लड़ाई पर जाऊँगा, पर तभी, जब मुझे आप यह यकीन दिला दो कि निश्चय ही मेरी विजय होगी। ऐसा सिपाही सच्चे शत्रुओं से तो दूर ही दूर भागेगा, पर काल्पनिक शत्रुओं से अलबत्ता लड़ेगा। वह कभी युद्ध-कला सीख ही नहीं सकता। उसकी पराजय ही होगी।

दूसरे, केवल बाहरी ब्रह्मचर्य को यह समझकर आदर्श मान लेना ग़लत है कि हम कभी तो ज़रूर उसतक पहुँच जायँगे, क्योंकि ऐसा करने से प्रत्येक प्रलोभन और प्रत्येक पतन उसकी आशाओं को एक दम नष्ट कर देता है और फिर इस बात पर से भी उसका विश्वास उठने लग जाता है कि ब्रह्मचर्य का आदर्श कभी सम्भवनीय या युक्तिसंगत भी है या नहीं। वह कहने लग जाता है कि ब्रह्मचारी रहना असम्भव है और मैंने अपने सामने एक ग़लत आदर्श रख छोड़ा है। फिर वह एकदम इतना शिथिल हो जाता है कि अपने को पूरी तरह भोग-विलास के अधीन कर देता है। यह तो उस योद्धा के समान हुआ, जो युद्ध में विजय प्राप्त करने की इच्छा से अपने बाहु पर गुप्त शक्तिवाला तावीज़ बाँध लेता है और आँखें मूँदकर विश्वास करता है कि वह तावीज़ युद्ध-प्रहारों से या मौत से उसकी रक्षा करता है। पर ज्योंही उसे तलवार का एकाध वार लगा नहीं कि उसका सारा धैर्य और पौरुष भगा नहीं। हम अपूर्ण मनुष्य तो यही निश्चय कर सकते हैं कि हम अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार,

अपनी भूत और वर्तमान अवस्था तथा चारित्र्य का ख़याल कर, अधिक से अधिक ब्रह्मचर्य का पालन करें।

दूसरे, हम इस बात का भी ख़याल न करें कि हम किसी काम को मनुष्यों की दृष्टि में ऊँचा उठने के लिए कर रहे हैं। हमारे न्यायकर्ता मनुष्य नहीं, हमारी अन्तरात्मा और परमेश्वर हैं। फिर हमारी प्रगति मे कोई बाधक नहीं हो सकता। तब प्रलोभन हमपर कोई असर नहीं कर सकेंगे और प्रत्येक वस्तु हमें उस सर्वोच्च आदर्श की ओर बढ़ने मे सहायक होगी। पशुता को छोड़ हम नारायण-पद की ओर बढ़ते जायेंगे।

❀ ❀ ❀

ईसाई मजहब में जीवन के भेद बतलाये गये हैं, परन्तु उसमे, मनुष्यों के पारस्परिक सभी सम्बन्धों में, आदर्श का— जीवन के उद्देश का वर्णन किया गया है। यही बात स्त्री-पुरुषों के सहवास-सम्बन्धी प्रश्न के सम्बन्ध में भी है। परन्तु जिन लोगों में सच्चे ईसाई-धर्म के भाव नहीं हैं, वे भिन्न-भिन्न प्रकार के जीवन की व्याख्या चाहते हैं। उन लोगों के लिए "चर्च मैरिज" का आविष्कार किया गया है कि जिसमें कोई भी बात ईसाई-धर्म की नहीं पायी जाती। रति (संभोग) तथा ऐसी ही अन्य बातों में—जैसे हिंसा, क्रोध आदि—मनुष्य को चाहिए कि वह कभी आदर्श को नीचा न करे और न कभी उसमें कोई रूपान्तर ही करे। किन्तु ठीक यही बात धर्माचार्यों (धर्म-गुरुओं) ने विवाह के सम्बन्ध मे की है।

ईसा के धर्म को अच्छी तरह न समझ पाने के कारण ही ईसाई और ग़ैर-ईसाई ये दो भेद उनमें हो गये हैं। सबसे स्थूल भेद वह है, जो कहता है कि बप्तिस्मा किये हुए मनुष्यों को ईसाई समझो। ईसा के उपदेशों के अनुसार जो शुद्ध पारिवारिक जीवन व्यतीत करता है, जो अहिंसा का पालन करता है, वह ईसाई है और इसके विपरीत आचरण करनेवाला ईसाई नहीं। पर ऐसा कहना भी ग़लत है। ईसाई-धर्म के अनुसार ईसाई और ग़ैर-ईसाई के बीच कहीं लकीर नहीं खींच सकते। एक तरफ प्रकाश है—ईसा, दूसरी ओर अन्धकार है—पशु। बस, इस मार्ग पर ईसा के नाम पर ईसा की ओर बढ़ो।

स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों के विषय में भी यही बात है। पूर्ण शुद्ध ब्रह्मचर्य आदर्श है। परमात्मा की सेवा करनेवाला विवाह की उतनी ही इच्छा करेगा, जितनी शराब पीने की। पर शुद्ध ब्रह्मचर्य के राजमार्ग में कई मञ्जिलें हैं। यदि कोई पूछे कि हम विवाह करें या नहीं, तो उसे केवल यही उत्तर दिया जा सकता है कि यदि आपको ब्रह्मचर्य के आदर्श का दर्शन नहीं हो पाया है, तो ख़्वामख़्वाह उसके सामने अपना सिर न झुकाओ। हाँ, वैवाहिक जीवन में विषयों का उपभोग करते हुए धीरे-धीरे उस आदर्श की ओर बढ़ो। यदि मैं ऊँचा हूँ और दूर की एक इमारत को देख सकता हूँ और मुझसे छोटे क़दवाला मेरा साथी उसे नहीं देख पाता, तो मैं उसे उसी दिशा में कोई नज़दीकवाली वस्तु दिखा कर उद्दिष्ट स्थान की कल्पना कराऊँगा। उसी प्रकार

जो लोग सुदूरवर्त्ती ब्रह्मचर्य के आदर्श को नहीं देख पाते, उनके लिए ईमानदारी के साथ विवाह करना उस दिशा की एक पास की मंजिल है। पर यह मेरी और आपकी 'बतायी मंज़िल है। स्वयं ईसा तो सिवा ब्रह्मचर्य के और किसी आदर्श को न तो बता सकते थे और न उन्होंने बताया ही है।

❀ ❀ ❀

संघर्ष जीवनमय और जीवन सघर्षमय है। विश्रान्ति का नाम भी न लीजिए। आदर्श हमेशा सामने खड़ा है। मुझे तबतक शान्ति नसीब नहीं हो सकती, जबतक मैं उस आदर्श को प्राप्त नहीं कर लेता। पर मैं उसकी तरफ एकसा नहीं बढ़ता रहता।

उदाहरण के लिए ब्रह्मचर्य को लीजिए। अर्थशास्त्र के क्षेत्र में जिस प्रकार अकाल-पीड़ितों को एक बार या अनेक बार भोजन करा देने से उनके पेट का सवाल हल नहीं होता, उसी प्रकार शारीरिक विषयोपभोग से मनुष्य को कभी सन्तोष नहीं होता। फिर सन्तोप कैसे होगा? ब्रह्मचर्य के आदर्श की सम्पूर्ण भव्यता को भली-भाँति समझ लेने से, अपनी कमज़ोरी पूर्णतया स्पष्ट रूप से देख लेने से, और उसे दूर कर उस उच्च आदर्श की ओर बढ़ने का निश्चय करने से। बस, सन्तोष केवल इसी तरह हो सकता है। अपने-आपको ऐसी परिस्थिति में रखकर हमें कभी सन्तोष नहीं होगा, जिसमें हम अपनी आँखें बन्दकर आदर्श के आदेशों और हमारे जीवन के बीचवाले भेद को देखने से इन्कार कर दें।

संसार की कितनी लड़ाइयाँ हैं, उनमें कामाभिलाषा (मदन) के साथ होनेवाली लड़ाई सबसे ज्यादा कठिन है, और सिवाय प्रारम्भिक बाल्यावस्था तथा अत्यन्त वृद्धावस्था के, कोई भी ऐसी अवस्था अथवा समय नहीं है, जिसमें मनुष्य इससे मुक्त हो। इसलिए किसी मनुष्य को इस लड़ाई से न तो कभी हताश होना चाहिए और न कभी ऐसी अवस्था की प्राप्ति की आशा करना चाहिए जिसमें उसका अभाव हो। एक क्षण के लिए भी किसी को निर्बलता न दिखानी चाहिए, किन्तु उन समस्त साधनों को एकत्र कर उनका उपयोग करना चाहिए, जो इस शत्रु को निःशस्त्र बना देते हैं—उन बातों का परित्याग कर देना चाहिए जो शरीर और मन को उत्तेजित ( दूषित ) करनेवाली हों और हमेशा काम करने में व्यस्त रहना चाहिए। यह तो हुआ एक मार्ग।

दूसरा मार्ग यह है कि यदि तुम इस लड़ाई में विजयी नहीं हो सकते, तो विवाह कर लो—अर्थात् किसी ऐसी स्त्री को पसन्द कर लो, जो विवाह करने के लिए राज़ी हो, और अपने मन में इस बात की दृढ़ प्रतिज्ञा कर लो कि यदि तुम अपना पतन रोक नहीं सकते तो तुम्हारा पतन इस स्त्री के साथ ही हो, इसीके साथ तुम अपनी सन्तान की यदि कोई हो, शिक्षा और लालन-पालन का प्रबन्ध करो, और उसीके साथ, उसका भरण-पोषण करते हुए तुम अपने ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करो। इसमें जितनी ही शीघ्रता की जायेगी, उतना ही अच्छा

है। मुझे और कोई दूसरा उपाय नहीं मालूम है। इन सब बातों के परे, इस अभिप्राय से कि इन दोनों उपायों का प्रयोग सफलता के साथ कर सके, मनुष्य को चाहिए कि वह ईश्वर के साथ अपना सम्बन्ध दृढ़ करे—हमेशा इस बात को स्मरण रक्खे कि मनुष्य उस परमपिता परमेश्वर के यहाँ से आया है और उसीके पास वापस जायगा और यह कि इस जीवन का सारा उद्देश्य और अर्थ उसी परमात्मा की आज्ञा का पालन करना, अर्थात् उसकी इच्छानुसार काम करना है।

जितना ही अधिक तुम उसकी याद करोगे, उतनी ही अधिक वह तुम्हारी सहायता करेगा।

एक बात और है। और वह यह कि यदि तुम्हारा पतन हो जाये तो कभी हताश मत होओ। यह मत समझ लो कि तुम्हारा नाश हो गया—कि इसके बाद तुम्हें अब अपनी रक्षा करने की कोई ज़रूरत नहीं रही और अब तुम्हें अपनी कुछ भी परवाह न करनी चाहिए। किन्तु इसके विपरीत, यदि तुम्हारा पतन हो गया है, तो तुम्हें और भी अधिक साहस के साथ इस लड़ाई में कटिबद्ध हो जाना चाहिए।

❀ ❀ ❀

काम मनुष्य को अन्धा कर देता है, उसकी विचार शक्ति को मूर्च्छित कर देता है। सारा संसार अन्धकारमय हो जाता है। मनुष्य उसके साथ के अपने सम्बन्ध को भूल जाता है। संयोग! कालिमा!! असफलता!!!

ओफ़, शिव शिव! इस भयंकर विकार को ग्रहण करके तुमने बहुत कष्ट उठाया, बहुत दुख सहा! मैं जानता हूँ कि यह किस तरह प्रत्येक वस्तु को छिपा देता है। हृदय और विवेक के आश्रय को क्षण भर के लिए किस तरह नष्ट कर देता है। पर इससे मुक्ति पाने का एक ही उपाय है। निश्चयपूर्वक समझ लो कि यह एक स्वप्न है, एक संमोहन अस्त्र है, जो आता है और निकल जाता है और तुम थोड़ी ही देर में अपनी पूर्व स्थिति को पहुँच जाओगे। विकार की आँधी जब अपने जोरों में होगी, तब भी तुम इस बात को समझ सकोगे। परमात्मा तुम्हारी सहायता करें!

❀ ❀ ❀

इस बात को कभी न भूल कि तू न तो कभी पूर्णतः ब्रह्मचारी रहा है और न रह सकता है। हाँ, तू उसके नजदीक ज़रूर पहुँच सकता है और तुझे इस प्रयत्न में कभी निराश न होना चाहिए। प्रलोभन के सामने और पतन की डाढ़ों में पहुँच जाने पर भी अपने आदर्श को न भूलना, और न भूलना इस बात को कि तू यहाँ से भी अछूता रहकर भाग सकता है। अपने दिल से कह कि मैं गिर रहा हूँ, पर मैं पतन से घृणा करता हूँ। मैं जानता हूँ कि इस समय नहीं, तो अगली बार ज़रूर मेरी विजय होगी।

❀ ❀ ❀

संपूर्ण ब्रह्मचर्य को नहीं, पर इसके अधिक-से-अधिक नज़दीक पहुँचने को ध्येय मानकर आप बढ़ना शुरू कीजिए। संपूर्ण ब्रह्म-

चर्य तो एक आदर्श सृष्टि की वस्तु है। सच-सच कहा जाय तो शरीरधारी मनुष्य उसे कभी प्राप्त नहीं कर सकता। वह तो केवल उस तरफ बढ़ने का प्रयत्न मात्र कर सकता है क्योंकि वह ब्रह्मचारी नहीं, विकारपूर्ण है। यदि आदमी विकारपूर्ण नहीं होता, तो उसके लिए न तो ब्रह्मचर्य के आदर्श की और न उसकी कल्पना ही की आवश्यकता होती। ग़लती तो यह है कि मनुष्य अपने सामने संपूर्ण (बाह्य—शारीरिक) ब्रह्मचर्य का आदर्श रखता है, न कि उसके लिए प्रयत्न करने का। प्रयत्न में एक बात गृहीत समझी जाती है - यह कि हर हालत में और हमेशा ब्रह्मचर्य विकारवशता से श्रेष्ठ है। सदा अधिकाधिक पवित्रता को प्राप्त करना मनुष्य का धर्म है।

यह भेद बड़ा महत्त्वपूर्ण है। बाहरी ब्रह्मचर्य को आदर्श समझनेवाले के लिए पतन या ग़लती सर्वनाशक होती है। एक बार की ग़लती भी पुनः प्रयत्न करने से उसे निराश कर देती है। ब्रह्मचर्य की ओर बढ़ने का प्रयत्न करनेवाले के लिए पतन है ही नहीं। निराशा उसके पास भी नहीं फटकती। विघ्न-बाधायें उसके प्रयत्न को रोकती नहीं बल्कि उसे और भी प्रबल प्रयत्न के लिए प्रेरणा करती हैं।

❀ ❀ ❀

जब मनुष्य केवल स्वार्थी होता है, अपने व्यक्तिगत आनन्द को छोड़ कर और किसी श्रेष्ठ बात को जानता ही नहीं, तब भले ही उसके लिए प्रेम—एक स्त्री को प्रेम करना—उन्नतिकर

प्रतीत हो; पर जिस मनुष्य ने एक बार परमात्मा के प्रेम का दर्शन कर लिया है, जो अपने पड़ोसी को अपने ही जैसा प्यार करने की कला को थोड़े से अंशों में भी जान गया है, वह तो ज़रूर ही उस वैषयिक प्रेम को एक ऐसी वस्तु समझेगा जिससे छुट्टी पाने की कोशिश करना ही श्रेयस्कर है और तुम भी इस ईसाई भ्रातृप्रेम से क्यों नहीं सन्तुष्ट रह सकते ? इसलिए, क्षमा करना, तुम्हारा यह कहना गलत है, स्त्री-जाति का अपमान है, कि उसके विषय के प्रेम के कारण तुम अपनी पवित्रता की रक्षा नहीं कर सकते। प्रत्येक मनुष्यप्राणी और खासकर सच्चा ईसाई चाहता है कि वह शारीरिक नहीं, आध्यात्मिक शक्ति का माध्यम हो। अपनी पवित्रता की रक्षा तुम अपनी ही शक्ति से करो और उस बहन को केवल अपना निःस्वार्थ, निर्विकार प्रेम अर्पण करो। परमात्मा के सिंहासन पर मनुष्य को न बैठाओ। विश्वास रक्खो, वह अनन्त शक्ति ( ईश्वर ) तुम्हें इतना अधिक बल देगी कि जिसकी तुम्हें आशा भी नहीं होगी। हाँ, और इसके अतिरिक्त उस बहन का निर्मल प्रेम भी तुम्हें बल देगा।

तुम लिखते हो कि तुम्हारा प्रेम ही उसकी रक्षा करता है। मै बिल्कुल नहीं समझा कि रक्षा 'किससे' करता है ? मैं यह भी नहीं समझ सका कि तुम्हें उसपर क्यों और किस कारण इतनी दया आती है ? हम लोगों में यह एक रिवाज़-सा हो गयी है कि पुरुष किसी न किसी अनोखे ढङ्ग से शादी करना चाहते हैं।

ईसा ने कहा है और पॉल ने इसका समर्थन किया है कि "यदि

मनुष्य निर्मल और निर्विकार प्रेम कर सकता है तो पहले वह ऐसा ही शुद्ध प्रेम करे।" यदि यह उससे न हो सके तो शादी कर ले। हमारी बुद्धि भी इसी बात को कहती है और आदमी किसी नये ढङ्ग से शादी कर ही नहीं सकता। जैसा कि संसार अब तक करता आया है वैसा ही उसे भी करना चाहिए। अर्थात् पहले वह अपना एक साथी ढूँढ़ ले, फिर उसी में एकनिष्ठ रहने का निश्चय कर ले और मृत्यु तक कभी उसे न छोड़े। साथ ही उसकी सहायता से विनष्ट ब्रह्मचर्य को पुनः प्राप्त करने की कोशिश करे। भले ही हम सामाजिक या धार्मिक रीति-रिवाजों को न मानें, पर फिर भी हम विवाह को संसार के विपरीत किसी दृष्टिकोण से नहीं देख सकते।

विवाह तो स्त्री-पुरुषों के पारस्परिक आकर्षण का स्वाभाविक फल है और यही रहेगा भी। विवाह में यदि कहीं इस हार्दिक और पारस्परिक प्रेम का अभाव है तो वह एक बुरी चीज है।

× × ×

मेरा खयाल है, मैं तुम दोनों को अच्छी तरह समझ गया हूँ। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे बीच मे जो कुछ भी दुःख और अशान्ति का कारण है, उसे निकाल डालूँ और तुम्हारे जीवन को आनन्दमय बना दूँ। उसका यह कथन सत्य है कि ईश्वर-प्रेम से नितान्त भिन्न स्त्री-पुरुषों के बीच का अनन्य प्रेम, इसमें बाधक है। पर इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि तुम उससे ऐसा ही अनन्य प्रेम करते हो। यह स्वाभाविक भी है। यह

तो मनुष्य के शरीर और स्वभाव का दोष है। पर इस बात को स्वीकार करते हुए हमें केवल उन्हीं बातों को ग्रहण करना चाहिए जो फ़ायदेमन्द हों और अच्छी हों और तमाम बुरी बातों को छोड़ देना चाहिए। यह भाव भला है कि हमारा प्रेम-पात्र प्रेय है, प्रेम करने योग्य है। मनुष्य स्वार्थवश प्यार नहीं करता। परमात्मा ही के आदेश को पूरा करने में, एक दूसरे की सहायता करने ही के लिए प्यार करता है। यह तो एक आनन्द है। पर इसके पहले हमें उस प्रेम को वैषयिकता के विष से मुक्त कर लेना ज़रूरी है; कभी-कभी यही हमें निर्विकार दिखायी देने लगता है। ईर्ष्या इसका चिन्ह है। और भी कितने ही सुन्दर-सुन्दर रूप धारणकर, यह हमारे सामने आता है। मै तो तुम्हें यही असली सलाह दूँगा कि अपने विकारों पर कभी विचार न करो, उनको एक-दूसरे के प्रति प्रकट न करो (यह छल नहीं, संयम है), अपने प्रेमपात्र को हमेशा अपने जीवन-कार्य के विषय में लिखो, जिसमें वह तुम्हारा साथी रहा हो। एक दूसरे को प्यार करने के विषय में लिखने की कोई आवश्यकता ही नहीं। यह तो तुम भी जानते हो और वह भी, इसलिए अपने तमाम कार्यों और शब्दों का हेतु भी तुम जानते हो। अपने प्रेमपात्र के प्रति अपने हृद्गत भावों को प्रकट करने की भी सीमा होती है। समझदार आदमी को चाहिए कि उसका उल्लङ्घन न करे। तुमने उसका उल्लङ्घन कर डाला है। इस सीमा को लाँघकर जो कुछ भी भाव प्रकाशित किया जाता है, वह आनन्द नहीं बल्कि भार-रूप हो जाता है।

परमात्मा ने तुम्हें जो प्रेम दिया है उसके आनन्द से सच्चा लाभ उठाओ। विशुद्ध प्रेम का पहले अर्थ समझ लो। सच्चा प्रेम स्वार्थी नहीं होता। वह अपने विषय में नहीं सोचता, सदा अपने प्रेमपात्र के कल्याण के विषय मे सोचता रहता है। ज्योंही हमारा प्रेम यह विशुद्ध स्वरूप धारण कर लेता है, ज्योंही उसकी अन्तर्गत दुःखद वेदना नष्ट हो जाती है, वह केवल आनन्दमय हो जाता है।

प्रेम कभी हानिकर नहीं हो सकता। हाँ, यदि वह भेड़ की खाल पहने अहङ्कार का भेड़िया न हो, बल्कि सच्चा प्रेम हो तो। एक कसौटी तुम्हें बतला देता हूँ। अपने प्रेम को जाँचने के लिए मनुष्य ज़रा अपने दिल से यह सवाल पूछ ले—"मेरे प्रेमपात्र के भले के लिए मै उसे छोड़ने के लिए तैयार हूँ, उससे सम्बन्ध त्यागने के लिए उद्यत हूँ? मेरी यह तैयारी है कि मै उसे कभी न देख पाऊँ तो मेरा दिल जरा भी न छटपटाये?" यदि मेरी यह तैयारी हो तब तो जरूर वह प्रेम शुद्ध है, निष्काम है। किन्तु यदि इसमें हमारे दिल को जरा भी पीडा हो, एक अन्ध आकांक्षा हो, थोड़ी भी चिन्ता हो, तो समझ लीजिए कि वह स्वार्थ से कलंकित है, यह भेडिया है और उसे मार डालना श्रेयस्कर है। मै जानता हूँ कि तुम प्रेमी हो, धर्मशील हो। मुझे विश्वास है कि यदि तुम्हें यह भेड़िया किसी भी रूप में दिखायी देगा, तो तुम उसे ज़रूर मार डालोगे।

हाँ, सब मनुष्यों को आदमी एक सा प्यार नहीं कर सकता।

एक ही व्यक्ति को अत्यन्त प्यार करने में महान् सुख का अनुभव होता है। पर स्मरण रहे, वह प्यार उसके प्रति हो, न कि अपने इन विकारों से सम्बन्ध रखनेवाले आनन्दानुभव के प्रति।

× × ×

मैंने इस 'प्रेम हो जाने' की दशा पर बहुत विचार और मनन किया; किन्तु मुझे मानव-जीवन के लिए इसका कोई अर्थ न दिखायी दिया, न मैं इसके लिए कोई स्थान ही कायम कर सका। पर फिर भी उसका अर्थ और उसका स्थान अत्यन्त स्पष्ट और निश्चित है। विलास और ब्रह्मचर्य के बीच जो संघर्ष चल रहा है, उसे सौम्य करने में इसका उपयोग होता है। विषय-लालसा के मुकाबले में जो युवक और युवतियाँ अपने को कमजोर पावें, उन्हें शादी के पहले अपने जीवन के अत्यन्त नाजुक समय में अर्थात् सोलह से लगाकर बीस वर्ष और उससे आगे की अवस्था तक विकार की उन भीषण यन्त्रणाओं से बचने के लिए 'प्रेम' करना पड़ता है। यही और केवल यही, प्रेम हो जाने का स्थान है। पर यदि वह विवाह के बाद व्यक्तियों के जीवनोपवन में कहीं पैर रखना चाहे तब तो उसे उसी समय मार भगाना चाहिए। वह लुटेरा है, घातक है।

× × ×

"प्रेम करना अच्छा है या बुरा ?" मेरे लिए तो इस सवाल का उत्तर स्पष्ट है।

यदि मनुष्य पहले ही से मनुष्योचित आध्यात्मिक जीवन

व्यतीत कर रहा है, तब तो उसके लिए 'प्रेम' और विवाह पतन है क्योंकि अपनी शक्तियों का कुछ हिस्सा उसे अपनी पत्नी, कुटुम्ब या अपने प्रेमपात्र को देना होगा। पर यदि वह पशु-जीवन व्यतीत कर रहा हो – खाने, कमाने, लिखने के क्षेत्र में हो, तब तो शादी कर लेना ही उसके लिये फ़ायदेमन्द है, जैसा कि पशु और कीटों के लिए है। शादी उसके प्रेम और सहानुभूति के क्षेत्र को बढ़ाने में सहायता करेगी।

× × ×

मै नहीं सोचता कि तुम्हें स्त्रियों से किसी प्रकार का भी विशेषकर आध्यात्मिक सम्बन्ध रखने की आवश्यकता है। स्त्रियों के साथ में सामाजिक सम्बन्ध भी मनुष्य को तभी रखना चाहिए जब स्त्री-पुरुष विषयक भेदभाव भी उसके दिल से निकल गया हो।

मेरा ख़याल है कि तुम्हें परिश्रम की भारी आवश्यकता है। परिश्रम ऐसा हो जो तुम्हारी समस्त शक्तियों को तल्लीन कर ले।

श्रीमती अलाइस स्टॉकहम का 'उत्पादक शक्ति' विषयक वह निबन्ध, जो उन्होंने मेरे पास भेजा है, मुझे बहुत अच्छा लगा। वह कहती हैं कि जब मनुष्य को अन्य प्राकृतिक क्षुधाओं के साथ-साथ विषय-क्षुधा लगती है, तब वह समझ ले कि यह किसी महान् उत्पादक कार्य के लिए प्रकृति का आदेश है। केवल वह विषय-वासना के हीन रूप में प्रकट हो रहा है। वह एक क़ूवत है जिसको बलिष्ठ इच्छा-शक्ति और दृढ़ प्रयत्न के द्वारा बड़ी

आसानी से अन्य शारीरिक अथवा आध्यात्मिक कार्य में परिणत किया जा सकता है।

मेरा भी यही खयाल है। वह सचमुच एक शक्ति है जो परमात्मा की इच्छा को पूर्ण करने में सहायक हो सकती है। वह पृथ्वी पर स्वर्ग-राज्य की स्थापना करने में अपना महत्त्वपूर्ण काम कर सकती है। जनन-कार्य द्वारा यही काम—पृथ्वी पर स्वर्ग को लाने का काम—हम अगली पुश्त, अर्थात् अपने बच्चों पर ढकेल देते हैं। ब्रह्मचर्य द्वारा इस शक्ति को ईश्वरेच्छा पूर्ण करने में प्रत्यक्ष लगा देना जीवन का सर्वोच्च उपयोग है। यह कठिन है, पर असम्भव नहीं। हमारे सामने सैकड़ों नहीं, हज़ारों आदमियों ने इसे करके दिखा दिया है।

इसलिए यदि तुम अपने विकार को जीत सको, तब तो मैं तुम्हें बधाई दूँगा। किन्तु यदि उसके सामने हारना ही पड़े, तो शादी कर लो। यह काम उतना अच्छा तो नहीं होगा, पर बुरा नहीं है। पॉल ने कहा है कि—'कामाग्नि से जलते हुए इधर-उधर पागल की तरह दौड़ते-फिरना और इस विष को रक्त में फैलने देना बुरा है।'

हाँ, एक बात और याद रखना। यदि तुम्हारी कल्पना स्त्रियों की संगत में कुछ विशेष आनन्द, विशेष सुख को बताने की कोशिश करे, तो उसपर कभी विश्वास न करना। यह सब कामुकता से उत्पन्न होनेवाला भ्रम है। जितना पुरुष के साथ बातचीत करने और उठने-बैठने में आनन्द आता है, उतना ही स्त्रियों के

सम्पर्क से भी आता है। पर खास कर स्त्री-सम्पर्क में ऐसा कोई विशेष आनन्द नहीं है। यदि हमें इसके विपरीत दीखता है, तो जरूर समझ लेना चाहिए कि हम भ्रम में हैं। भ्रम ज़रा सूक्ष्म है, मीठा है, पर है जरूर भ्रम ही।

× × ×

तुम पूछते हो, विकार से झगड़ने का कोई उपाय बताइए। ठीक है। परिश्रम, उपवास आदि छोटे उपायों में सबसे अधिक कारगर उपाय है दारिद्र्य—निर्धनता, बाहर से भी अकिंचन दिखायी देना जिससे मनुष्य स्त्रियों के लिए आकर्षण की वस्तु न रहे। पर प्रधान और सर्वोत्तम उपाय तो अविरत संघर्ष ही है! मनुष्य के दिल में हमेशा यह भाव जाग्रत रहना चाहिए कि यह संघर्ष कोई नैमित्तिक या अस्थायी अवस्था नहीं, बल्कि जीवन की स्थायी और अपरिवर्तनीय अवस्था है।

× × ×

तुमने मुझे 'स्कौप्ट्सी'* जाति के विषय में पूछा है। लोग उन्हें बुरा कहते हैं, क्या यह उचित है? क्या वे मैथ्यू के प्रवचन के उन्नीसवें अध्याय का आशय ठीक-ठीक समझ गये हैं, जिसके १० वें पद्य के आधार पर वे अपने तथा दूसरे की जननेन्द्रियों को काट डालते हैं?

*यह रूस की एक किसान जाति है, जिसका पुरुष वर्ग ब्रह्मचर्य-पूर्वक जीवन व्यतीत करने में समर्थ होने के लिए श्रद्धापूर्वक अपनी जननेन्द्रिय को काट डालता है। —अनुवादक

पहले प्रश्न के विषय में मेरा यह उत्तर है कि पृथ्वी पर कोई बुरा नहीं है। सभी एक पिता की सन्तान हैं। सभी भाई-भाई हैं। सभी समान हैं। न कोई किसीसे अच्छा है, न कोई किसी से बुरा। स्कोप्ट्सी लोगों के विषय मे मैंने जो कुछ भी सुना है उसके आधार पर तो यही जानता हूँ कि वे नीतिमय और परिश्रमी जीवन व्यतीत करते हैं। अब दूसरे प्रश्न का उत्तर कि वे प्रवचन का ठीक आशय समझकर ही अपनी इन्द्रियों को काटते हैं या कैसे? मैं निर्भ्रान्त चित्त से कहता हूँ कि उन्होंने प्रवचन के आशय को ठीक-ठीक नहीं समझा। खासकर अपनी तथा दूसरों की इन्द्रियों को काटना तो सच्ची ईसाइयत के साफ़-साफ विपरीत है। ईसा ने ब्रह्मचर्य के पालन का उपदेश दिया है पर यथार्थतः उसी ब्रह्मचर्य का सच्चा मूल्य और महत्त्व है, जिसका अन्य सद्गुणों की भाँति श्रद्धापूर्वक हर संकल्प से विकारों के साथ युद्ध करके पालन किया जाता है। उस संयम का महत्त्व ही क्या, जहाँ पाप की संभावना ही नहीं? यह तो वही बात हुई कि कोई मनुष्य अधिक खाने के प्रलोभन से बचने के लिए किसी ऐसी दवा को ले जिससे उसकी भूख ही कम हो जाय, या कोई युद्धप्रिय आदमी अपने को लड़ाई में भाग लेने से बचाने के लिए अपने हाथ-पैर बँधवा ले; अथवा गाली देने की बुरी आदतवाला अपनी जबान को ही इस ख़याल से काट डाले कि उसके मुँह से गाली निकलने ही न पावे। परमात्मा ने मनुष्य को ठीक वैसा ही पैदा किया है जैसा कि वह यथार्थ में है। उसने उसकी मरणा-

धीन काया मे प्राणों को इसलिए प्रतिष्ठित किया है कि वह शारी-रिक विकारों को अपने अधीन करके रखे। यही संघर्ष तो मानव जीवन का रहस्य है। यह शरीर उसे इसलिए नहीं मिला है कि वह ईश्वरप्रदत्त कार्य के लिए स्वयं को या दूसरे को विकलाग वना दे।

यदि स्त्री या पुरुष एक दूसरे की ओर विपयातुर होते हैं, तो उसमे भी परमात्मा का एक हेतु है। मनुष्य पूर्ण वनने के लिए वनाया गया है। यदि एक पीढ़ी इस पूर्णता को किसी तरह न प्राप्त कर सके, तो कम से कम अगली तो उसे प्राप्त करने की कोशिश करे। धन्य है, उस परमपिता की चातुरी को! "ऐ मनुष्य, अपने स्वर्गस्थ पिता के समान पूर्ण वन।" इस पूर्णता को प्राप्त करने की कुंजी है ब्रह्मचर्य। केवल शारीरिक ब्रह्मचर्य नहीं, बल्कि मानसिक भी—विपय-वासना का सम्पूर्ण अभाव। यदि मनुष्य सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने लग जाय, तो मानव-जाति का जीवनोद्देश्य ही सफल हो जाय। फिर मनुष्य के लिए पैदा होने और जीने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाय। क्योंकि तब तो मनुष्य देवदूत हो जायँगे। फिर विवाह आदि की कोई झंझट ही न रह जायगी। पर चूंकि मनुष्य ने अभी उस पूर्णता को प्राप्त नही किया है, इसलिए वह नवीन पीढ़ियों को पैदा करता जा रहा है। ये नवीन पीढ़ियाँ अपनी शक्ति के अनुसार पूर्णता के अधिकाधिक नजदीक पहुँचती जा रही हैं। इसके विपरीत यदि सभी मनुष्य उन अज्ञानी स्कोप्टसी किसानों की भाँति स्वय को

विकलाङ्ग करते जायें, तो अपने जीवनोद्देश्य को—परमात्मा की इच्छा को—बिना ही पूर्ण किये मनुष्य-जाति का अन्त हो जायगा।

यह पहला कारण है जिससे मै अज्ञानी किसानों के उस काम को ग़लत समझता हूँ। दूसरा कारण यह है कि धर्माचरण कल्याणप्रद होता है (ईसा ने कहा है मेरा जुआ आसान और बोझ हलका है) और हर प्रकार की हिंसा की निन्दा करता है। यदि वह आघात या कष्ट दूसरे को पहुँचाता हो, तब तो पाप ही है। पर खुद अपने ऊपर भी ऐसा अत्याचार करना ईसाई नियमों का भङ्ग करना है।

तीसरा कारण यह है कि यह किसान-जाति स्पष्ट रूप से मैथ्यू के उस उन्नीसवें अध्याय के बारहवें पद्य का ग़लत अर्थ करती है। अध्याय के आरम्भ में जो कुछ कहा गया है वह सब विवाह के विषय में है। और ईसा विवाह के लिए मना नहीं करता। वह तो तलाक की, एक से अधिक पत्नियाँ करने की मुमानियत करता है। इस तरह विवाहित जीवन में भी ईसा ने संयम पर ज्यादा-से-ज्यादा जोर दिया है। मनुष्य के केवल एक ही पत्नी होनी चाहिए। इस पर शिष्यों ने शंका की (पद्य १०) कि यह संयम तो बड़ा मुश्किल है, एक ही पत्नी से काम चलना तो नितान्त कठिन है। इस पर ईसा ने कहा कि यद्यपि मनुष्य जन्म-जात अथवा मनुष्यों के द्वारा बनाये गये नपुंसक पुरुष की भाँति विषय-भोग से अलग नहीं रह सकते, तथापि कई ऐसे

लोग हैं जिन्होंने उस स्वर्गराज्य की अभिलाषा से अपने को नपुंसक बना लिया है, अर्थात् आत्मबल से विकारों को जीत लिया है और प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि वह इनका अनुकरण करे। "स्वर्गीय राज्य की अभिलाषा से अपने को नपुंसक बना लिया है।" इन शब्दों का अर्थ 'शरीर पर आत्मा की विजय करना' होना चाहिये न कि जननेन्द्रिय को मिटा देना। क्योंकि जहाँ पर इस शारीरिक विकलांगता से उनका तात्पर्य है वहाँ उन्होंने कहा है -"दूसरे मनुष्यों के द्वारा बनाये गये नपुंसक पुरुष" पर जहाँ आत्मिक विजय से मतलब है वहाँ उन्होंने कहा है—"अपने को नपुंसक बना लिया।"

यह मेरा अपना मन्तव्य है और मैं उस बारहवें पद्य का इस तरह अर्थ करता हूँ। पर यदि प्रवचन के शब्दों का यह अर्थ तुम्हें सन्तोषजनक न भी दिखाई देता हो तो भी तुम्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि केवल आत्मा ही जीवन देनेवाली है। ऐच्छिक रूप से या जबरन मनुष्य को विकलांग कर देना ईसाई धर्म की आत्मा के बिलकुल विपरीत है।

× × ×

मैं समझता हूँ विवाह में सहवास (संभोग) एक आचार-विरुद्ध कर्म (व्यभिचार) नहीं है, परन्तु इस बात को प्रमाण के साथ लिखने के पहिले मैं इस प्रश्न पर कुछ अधिक ध्यानपूर्वक विचार कर लेना चाहता हूँ, क्योंकि इस कथन में भी कुछ सत्यता प्रतीत होती है कि काम-पिपासा बुझाने के लिए अपनी धर्म-पत्नी

के साथ भी किया गया सभोग पाप है। मैं तो समझता हूँ कि इन्द्रिय-विच्छेद कर देना भी वैसा ही पाप-कर्म है जैसा कि विषय सुख के लिए संभोग (रति) करना। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मै समझता हूँ कि आवश्यकता से अधिक खा लेना अथवा अनशन व्रत करके या विष खाकर प्राण दे देना समान-रूप से ही पाप-कर्म हैं। जो भोजन मनुष्य को अपने अन्य भाइयों की सेवा करने के योग्य बनाता है, वह न्यायोचित भोजन है, और इसी प्रकार वह मैथुन भी न्यायोचित (जायज़) है जो सन्तानोत्पत्यर्थ (वंश चलाने के उद्देश्य से) किया जाता है।

पढ (नपुंसक) लोगों का यह कहना सही है कि स्वपत्नी के साथ में किया गया सभोग भी आचार-विरुद्ध अर्थात् व्यभिचार है यदि वह बिना आध्यात्मिक (विशुद्ध) प्रेम के केवल विषय-सुख के लिए और इसलिए नियत समय के ऊपर न किया गया हो; परन्तु उसका यह कहना सर्वथा अनुचित और भ्रम-मूलक है कि सन्तानोत्पत्यर्थ और विशुद्ध आध्यात्मिक प्रेम के होते हुए किया गया मैथुन भी पाप है। वास्तव में यह पाप नहीं किन्तु ईश्वर की आज्ञा का पालन करना है।

इन्द्रिय-विच्छेद मेरी सम्मति में बिल्कुल ऐसा है:—मान लीजिए कि एक मनुष्य दुराचार-मय (आवारगी का) जीवन व्यतीत करता रहा है, और अपने ग़ल्ले से शराब बनाने और पीने का आदी हो गया है, और अब वह इस बात का अनुभव करने लगा है कि वह ग़लती पर है और पाप कर रहा है। बजाय

इसके कि वह इस आदत को छोड़ दे और इस गल्ले (अनाज) को अच्छे काम मे, जैसे मनुष्यों और पशुओं की सेवा में, लाना सीख ले, वह यह तय करता है कि उसके इस पाप से बचने का एक मात्र उपाय यह है कि वह अपना वह सारा अनाज जला दे, और वह ऐसा ही करने लगता है। इसका परिणाम यह होता है कि उसका पाप उसके अन्दर जैसा का तैसा ही बना रहता है। उसके पडोसी लोग पहले की भाँति ही मदिरा और आसव तैयार करते रहते हैं, परन्तु वह न तो अपने परिवार को भोजन दे है, न खुद खा पाता अथवा दूसरों को खिला पाता है।

विना कारण ही ईसा-मसीह ने यह कहकर छोटे-छोटे बालकों की प्रशंसा नही की है कि ईश्वर का साम्राज्य उन्हीं का है, और जो बातें बुद्धिमान और परिणामदर्शी मनुष्यों से गुप्त रक्खी जाती हैं, वे उनपर प्रकट कर दी जाती है। इस बात को हम स्वयं भी जानते हैं। यदि छोटे-छोटे बालक न होते, यदि उनका पैदा होना बन्द हो जाता, तो पृथ्वी तल पर ईश्वर के साम्राज्य की कोई भी आशा न रह जाती। केवल उन्हींमे हमारी आशा है। हम तो पहले ही विगड़ चुके हैं और अब यह बडा कठिन है कि हम अपने को पुन. पवित्र कर सकें। पर यहाँ तो प्रत्येक पीढ़ी में, प्रत्येक परिवार में नये-नये बच्चे पैदा होते हैं जो निर्दोष पवित्र आत्मायें हैं। सम्भव है ये आखिर तक पवित्र रह सकें। नदी का पानी गन्दा और अपवित्र है पर उसमें कितने ही निर्मल जल के

स्रोत मिले हुए हैं। इसलिए यह आशा करना व्यर्थ नहीं कि एक दिन उस नदी का पानी भी उन्हीं स्रोतों के समान निर्मल हो सकेगा।

यह एक महान् प्रश्न है और इसपर विचार करते हुए मुझे बड़ा आनन्द आता है। मै तो केवल यह जानता हूँ कि विषयी जीवन बिताना तथा विकार के भय से इन्द्रिय को काटकर जीना दोनों के दोनों बुरे हैं। पर इन दोनों में इन्द्रिय काटना तो बहुत ही बुरा है।

विकाराधीनता में कोई गर्व की बात नहीं, बल्कि लज्जा की बात है। पर अंग-वैकल्य मे लज्जा नहीं। बल्कि लोग तो इस बात पर अभिमान करते हैं कि उन्होंने प्रलोभन और संघर्ष से बचने के लिए परमात्मा के नियम को ही तोड़ डाला। सच तो यह है कि अङ्ग-वैकल्य में विकार नष्ट नहीं होता। यथार्थतः आत्मा की, हृदय की शुद्धि की आवश्यकता है। लोग इस जाल में क्यों फँस जाते हैं? इसका एकमात्र कारण यह है कि अन्य सब भले ही नष्ट हो जायँ, पर काम-विकार एक ऐसी वस्तु है जो कभी नष्ट हो ही नहीं सकती। पर फिर भी मनुष्य का कर्तव्य है कि वह तमाम विकार के नाश करने की कोशिश करे। तन, मन, धन से यदि मनुष्य परमात्मा को प्यार करने लग जाय, तो वह अपने आप को पूरी तरह भूल सकता है। पर वह तो बड़ा लम्बा रास्ता है और यही कारण है कि लोग घबराकर कोई छोटा नजदीक का रास्ता ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं कि इस नजदीक के

रास्ते से चलकर भी हम अपने मुकाम पर पहुँच सकेंगे और हम भीषण विकार से अपना पिंड छुड़ा सकेंगे; पर दुर्दैव तो यह है कि ऐसी पगडण्डियों पर भटकने मे मनुष्य अक्सर अपने मुकाम पर पहुँचने के बदले उलटा किसी दलदल में जा फँसता है।

मनुष्य-जाति को टिकाये रखने के लिए अलबत्ता विवाह अच्छा और आवश्यक है। पर यदि लोग केवल इसी उद्देश्य से विवाह करना चाहें, तो यह आवश्यक है कि वे पहले इस बात को महसूस करें कि हमारे अन्दर अपने बच्चों को सुशिक्षित और सुसंस्कृत करने की शक्ति है। अपने बच्चों को वे समाज का अन्न खुटानेवाले नहीं, बल्कि ईश्वर और मनुष्य का सच्चा सेवक बनाने के इच्छुक हों और इसके लिए यह आवश्यक है कि उनमें ऐसी शक्ति हो जिससे वे दूसरों की कृपा पर नहीं, बल्कि अपने पराक्रम से जियें। मनुष्य-जाति से जितना लें, उससे अधिक उसे दें।

इसके विपरीत हम लोगों में यह कल्पना घर कर गयी है कि मनुष्य तभी शादी करे जब वह दूसरे की गर्दन पर अच्छी तरह सवार हो गया हो। दूसरे शब्दों में जब उसके पास 'साधन-विपुलता' हो। पर होना चाहिए इसके ठीक विपरीत। केवल वही विवाह करे, जो साधनहीन होने पर भी अपने बच्चों का पालन-पोषण और शिक्षण का बोझ उठाने की क्षमता रखता हो। केवल ऐसे ही पिता अपने बच्चों को अच्छी तरह सुशिक्षित कर सकते हैं।

विषयेच्छा यदि ईश्वर के कानून को पूर्ण करने की नहीं तो अपने वंशजों द्वारा उसकी पूर्ति को अनिवार्य बनाने के साधनों की रचना की भूख है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में इसकी सचाई की अनुभूति भी होती है। मनुष्य जितना ही उस कानून की पूर्ति के नजदीक पहुँचता है, उतना ही उसकी क्षुधा से वह मुक्त होता जाता है। साथ ही वह जितना ही उसकी पूर्ति से दूर रहता है उतने ही ज़ोरों से वह विषय-क्षुधा को अनुभव करता है।

× × ×

विषय-भोग आकर्षक इसलिए है कि वह हमारे एक महान् कर्तव्य से मुक्ति पाने का साधन है। मानों वह मनुष्य को एक बोझ से मुक्त कर, उसे दूसरे पर डाल देता है। मैं नहीं, तो मेरे बच्चे स्वर्ग-राज्य को पायेंगे। इसलिये स्त्रियाँ अपने बच्चों में इतनी तन्मय हो जाती हैं।

× × ×

एन्० ने ब्रह्मचर्य की कल्पना का विरोध किया। दलील यह पेश की गयी कि यदि सभी ब्रह्मचर्य का पालन करने लग जायँगे तो मनुष्य जाति का अन्त ही हो जायगा। इसका उत्तर मैंने इस तरह दिया था—पादरियों के विश्वास के अनुसार संसार का अंत एक-न-एक दिन निश्चित् है। विज्ञान भी यही कहता है कि किसी एक समय पृथ्वी के तमाम प्राणी ही नहीं, स्वय पृथ्वी भी नष्ट हो जायगी। फिर केवल इसी कल्पना में इतना चौंकने योग्य क्या है कि नीतिमय और सदाचारयुक्त जीवन से एक

दिन मनुष्य-जाति का अन्त होने की सम्भावना है ? शायद पहली और दूसरी वात साथ-साथ भी हों। वल्कि किसी लेखक ने अपने लेख में यह सूचित भी किया है "ब्रह्मचर्य का पालन कर मनुष्य अपने को ऐसी बुरी मौत से वचा क्यों न ले !' वाह। क्या ख़ूब ?

हारशेल ने एक हिसाव लगाया है। वह कहता है कि आज की तरह यदि संसार के आरम्भ-काल से मनुष्य-संख्या प्रतिवर्ष दूनी होती रहती, तो पहले स्त्री-पुरुष के वाद सात हजार वर्ष में ही—मान लें कि अभी मनुष्य-जाति की उम्र इतनी ही है—हमारी संख्या वेहद वढ़ जाती कि अगर पृथ्वी पर उन समस्त मनुष्यों को पिरामिड के आकार में एक के सिर पर एक खड़े कर दें, तो वे पृथ्वी से सूर्य की दूरी से २७ गुना अधिक ऊँचा पहुँच जाते।

इससे परिणाम क्या निकले ? सिर्फ दो वातें—या तो हमें प्लेग या महायुद्धों का स्वागत करना और उन्हें चाहना चाहिए या फिर ब्रह्मचर्यमय जीवन की ओर वढ़ता जाना चाहिए। वढ़ती हुई मनुष्य संख्या से सयम का आदर्श ही हमें वचा सकता है।

प्लेग और युद्धों के अङ्कों को सयमशील राष्ट्र की जन-संख्या से तुलना करके देख लेना चाहिए। तुलना वडी मनोरजक सावित होगी। निश्चय ही इसका सम्वन्ध एक दूसरे के विपरीत होगा। जहाँ विनाशक साधनों की सख्या कम है, वहाँ संयम-शीलता अधिक पायी जायगी। एक, दूसरे की पूर्ति करती है।

हठात हम एक दूसरे नतीजे पर भी पहुँचते हैं; पर मै इसे

अभी स्पष्ट रूप से रखने में समर्थ नहीं हूँ। वह यही है कि, मनुष्य-संख्या के घटने की चिन्ता करना, उसका हिसाब लगाते बैठना ठीक नहीं है। केवल प्रेम ही श्रेष्ठ मार्ग है। पर पवित्रता को छोड़कर प्रेम कभी अकेला रहता ही नहीं। हम एक ऐसे आदमी की कल्पना करते हैं, जो जन-संख्या को बढ़ाना भी चाहता है और घटाना भी। एक साथ ही चित्त में दोनों इच्छाओं का होना असम्भव है। एक उपाय है। एक प्राणी की जान निकालकर उसी समय दूसरा उत्पन्न करना होगा। क्या यह हो सकता है?

एक बात बुद्धिसंगत है। "अपने स्वर्गीय पिता के समान पूर्ण बन।" यह पूर्णता पहले पवित्रता और बाद में प्रेम में निवास करती है। पहला नतीजा है पवित्रता, दूसरा मनुष्य-जाति की रक्षा।

वही अपने एक दूसरे पत्र में लिखता है कि विषयभोग पवित्र कार्य है क्योंकि इससे वंशवृद्धि होती है। इसपर मैं यह सोच रहा हूँ कि जिस प्रकार अन्य प्राणियों के साथ-साथ मनुष्य को भी जीवन-संघर्ष के सिद्धान्त के सामने सिर झुकाना पड़ता है, उसी प्रकार उसे पुनर्जनन के धर्म के सामने भी अन्य प्राणियों की भाँति अपना मस्तक झुकाना पड़ता है।

पर मनुष्य पशु नहीं है। संघर्ष के विपरीत उसका अपना एक भिन्न धर्म है—प्रेम। इसी प्रकार पुनर्जनन के विपरीत भी उसका अपना एक उच्चतर धर्म है—संयम, ब्रह्मचर्य।

× × ×

'अपने माता-पिता, बीबी-बच्चे आदि को छोड़कर मेरा अनुसरण कर' इन शब्दों का अर्थ तुमने गलत समझा है। जब मनुष्य के चित्त में धार्मिक और पारिवारिक कर्तव्यों के बीच युद्ध छिड़ जाय, तब समझौते की शर्तें बाहर से नहीं पेश की जा सकतीं। बाहरी नियम या उपदेश कोई काम नहीं कर सकते। इनको तो मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार खुद ही सुलझाना चाहिए। आदर्श तो वही रहेगा, 'अपनी पत्नी को छोड़कर मेरे पीछे चल।' पर यह बात तो केवल वह आदमी और परमात्मा ही जानता है कि इस आदेश का पालन वह कहाँ तक कर सकता है?

तुम पूछ सकते हो - 'अपनी पत्नी को छोड़ने' का अर्थ क्या होता है? क्या इसके मानी यह हैं कि इसे "त्याग दो, इसके साथ सोना बन्द कर दो, सन्तानोत्पत्ति न करो"?

हाँ, स्त्री को छोड़ने के मानी यही हैं कि हम उससे पतित्व का रिश्ता तोड़ दें। संसार की अन्य स्त्रियों की तरह अपनी बहन की तरह उसे समझें। यह आदर्श है। पर इसकी पूर्ति इस तरह करनी चाहिए जिससे उसे (पत्नी को)[*] क्षोभ न होने पावे, उसकी राह न रुक जाय, उसे प्रलोभन और अनीतिमय जीवन की ओर न बहा ले जाय। यह महा कठिन कार्य है। ईसा द्वारा

---

[*] अवश्य ही संयमशील जीवन व्यतीत करने की अभिलाषा रखनेवाले प्रत्येक पुरुष और स्त्री के लिए भी टॉलस्टाय की यही सिफारिश है।

बताये संयम-शील जीवन की ओर बढ़नेवाला प्रत्येक पुरुष अपने ही द्वारा पहुँचाये गये इस घाव को भरने की कठिनाई को महसूस करता है। मैं तो केवल एक ही बात सोच और कह सकता हूँ। विवाह हो जाने पर भी पाप को बढ़ाने का मौका न देते हुए अपनी शक्ति भर और जीवन भर अविवाहित संयम-शील जीवन व्यतीत करने की कोशिश करनी चाहिए।

× × ×

संयम, बस, संयम ही सब कुछ है। संयम-शक्ति का विकास सबसे अधिक महत्त्व रखता है। जिस क्षण लोग ब्रह्मचर्य-संयम में कल्याण का दर्शन कर लेंगे, बस उसी क्षण विवाह-प्रथा कम हो जायगी।

× × ×

जीवन को सुखमय बनाने के खयाल से ही यदि कोई शादी करेगा, तो उसे अपने उद्देश में कदापि सफलता न मिलेगी। अन्य सब बातों को अलग रखकर, केवल विवाह को—प्रियतम व्यक्ति के साथ सम्मिलन को—ही जीवन का लक्ष्य बना लेना ग़लती है। आदमी यदि विचार करे, तो उसे यह गलती नजर भी आ सकती है। जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या विवाह है? अच्छा, आदमी शादी करता है। तब क्या? यदि उन दोनों को जीवन में कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं है, तो उसे उत्पन्न करना या ढूँढ़ना अत्यन्त कठिन ही नहीं, पर असम्भव होगा। साथ ही यह स्पष्ट है कि यदि दोनों के जीवन में विवाह के पूर्व साधर्म्य नहीं है

तो विवाह के बाद उनका दिल मिलना असम्भव है। वे शीघ्र ही एक दूसरे से दूर होने लगेंगे। विवाह तभी सुखकर होता है जब दोनों के जीवन का लक्ष्य एक ही होता है।

दो व्यक्ति एक ही रास्ते पर मिलते हैं और कहते हैं—"चलो, हम साथ-साथ चले चलें।" बहुत अच्छा। दोनों एक दूसरे को सहारा देते हैं और अपना रास्ता तय करते हैं।

पर जब वे अपने-अपने रास्ते पर मुड़ते हैं, तब हृदय में पारस्परिक आकर्षण होने पर भी वे एक दूसरे की सहायता नहीं कर सकते। इसका कारण यही है कि लोगों की ये धारणायें गलत हैं कि जीवन रुदनमय है अथवा जैसा कि अधिकांश लोग समझते हैं कि यौवन, स्वास्थ्य और सम्पत्ति के होने पर वह सुख और आनन्द की खान है।

यथार्थ में जीवन सेवा का क्षेत्र है। इसमें मनुष्य को कई बार असीम कष्ट सहने पड़ते हैं। पर साथ ही कई बार आनन्द भी कई प्रकार का मिलता है। मनुष्य को जीवन में सच्चा आनन्द तभी प्राप्त होता है, जब वह अपने जीवन को सेवामय बना लेता है। अपने व्यक्तिगत सुख को छोड़कर जब वह ससार में किसी उद्देश्य को स्थिर कर लेता है। अक्सर विवाह करनेवाले इस बात की ओर ध्यान नहीं देते। विवाहित जीवन में और पितृ-पद प्राप्त करने पर कितने ही आनन्द के प्रसग आते जाते रहते हैं। मनुष्य सोचता है—जीवन और क्या है? इससे कुछ भिन्न थोड़े ही है। पर यह भयंकर भूल है।

जीवन में किसी ध्येय को स्थिर किये बिना ही यदि माता पिता जियें और बच्चे पैदा करते रहें, तो कहना होगा कि वे इस प्रश्न को आगे धकेल रहे हैं कि जीवन का उद्देश्य क्या है? साथ ही वे इस बात को जानने से इन्कार करते हैं कि जीवन के लक्ष्य का बिना ही ध्यान किये रहने का क्या फल होता है? वे इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न को भले ही आगे धकेल दें, पर बच इससे कदापि नहीं सकते, क्योंकि अपने और बच्चों के जीवन का कोई ध्येय निश्चित न करने पर भी उन्हें उनको सुशिक्षित तो जरूर करना ही होगा। ऐसी दशाओं में माता-पिता अपने मनुष्योचित्त गुणों और उनसे उत्पन्न होनेवाले सुख से हाथ धो बैठते हैं और केवल बच्चे बढ़ानेवाली कल बन जाते हैं।

और इसलिए विवाह की इच्छा करनेवाले लोगों से मैं कहता हूँ कि अभी आपके सामने विशाल जीवन पड़ा हुआ है। इसलिए आप सबसे पहले अपने जीवन का लक्ष्य निश्चित कर लें। और इसपर प्रकाश डालने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह उन तमाम परिस्थितियों का विचार और निरीक्षण कर ले कि जिसमें वह रहता है। जीवन में कौनसी चीज महत्त्वपूर्ण है और कौनसी व्यर्थ है, इस विषय में यदि उसने पहले भी कोई विचार किया हो, तो उसको भी पूरी तरह जॉच ले। वह यह भी निश्चिय कर ले कि वह किसमें विश्वास करता है अर्थात् वह किस बात को शाश्वत सत्य मानता है और किन सिद्धान्तों के अनुसार वह अपने गढ़ना चाहता है? इन बातों का केवल विचार और निश्चय ही

करके वह न ठहरे। उनपर अमल करना भी शुरू कर दे, क्योंकि जबतक मनुष्य किसी सिद्धान्त पर अमल करने नहीं लग जाता, तबतक वह यह नहीं जान पाता कि वह उसमें सचमुच विश्वास भी करता है या नहीं। तुम्हारी श्रद्धा को मैं जानता हूँ। इस श्रद्धा के जिन अंगों पर तुम अमल कर सको, अभी से उनको स्पष्ट करके उन पर अमल करना शुरू कर दो। यही उसके लिए सबसे योग्य समय है। यह विश्वास और श्रद्धा अच्छी है कि मनुष्य से प्रेम करना चाहिए और उनका प्रेमपात्र बनना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैं तीन प्रकार से सतत प्रयत्न करता हूँ। इसमें अति की शंका ही न होनी चाहिए। और यही तुम्हें भी इस समय करना चाहिए।

पहले तो दूसरे से प्रेम करना और उसका प्रेमपात्र बनना-सीखना हो, तो मनुष्य को सबसे पहले यह सीखना चाहिए कि दूसरों से अधिक आशा न करो। जितनी हो सके अपनी आशा में कामनाओं को घटा दो। यदि मैं दूसरे से अधिक अपेक्षा करूँगा, तो मुझे उनकी पूर्ति का अभाव भी बहुत अखरेगा। फिर मैं प्रेम करने की ओर नहीं, दोष देने की ओर झुकूँगा। अतः इस विषय में बहुत कुछ सावधानी और तालीम की आवश्यकता है।

दूसरे, केवल शब्दों से नहीं, कार्य द्वारा प्यार करना सीखना चाहिए। अपने प्रेमपात्र की किसी न किसी प्रकार उपयोगी सेवा करना सीखना आवश्यक है। इस क्षेत्र में और भी अधिक काम है।

तीसरे, प्यार करने की कला सीखने के लिए मनुष्यों को शान्ति और नम्रता के गुणों को धारण करना चाहिए। इसके अलावा उनके लिए अप्रिय वस्तुओं मनुष्यों के अप्रिय प्रभावों के को सहन कर लेने की क्षमता प्राप्त कर लेना भी परमावश्यक है। अपने व्यवहार को ऐसा बनाने की कोशिश करनी चाहिए जिससे किसी को कोई क्लेश न हो। यदि यह असम्भव दिखायी दे, तो कम से कम, हमें किसी का अपमान तो कदापि न करना चाहिए। हमेशा यह प्रयत्न रहे कि मेरे शब्दों की कटुता जहाँ तक सम्भव हो, कम हो जाय। यहाँ हमें और भी ज्यादा काम करना है। उठने के बाद सोने तक काम ही काम बना रहेगा। और यह कार्य होगा—आनन्दमय ; क्योंकि प्रतिदिन हमें अपनी प्रगति पर खुशी होती रहेगी। अब हमें शनैः-शनैः लोगों के प्रेम-भाव के रूप में इसका आनन्ददायक पुरस्कार भी मिलने लगेगा।

इसलिये मैं तुम दोनों को सलाह दूँगा कि जितनी गम्भीरता के साथ हो सके, विचार करो और अपने जीवन को गम्भीर बनाओ, क्योंकि ऐसा करने ही से तुम्हें पता लगेगा कि तुम एक ही पथ के पथिक हो या नहीं। साथ ही तुम्हें यह भी मालूम हो जायगा कि तुम दोनों को विवाह करना उचित है या नहीं। गम्भीर विचार और जीवन द्वारा अपने को अपने उद्देश्य के नज़दीक भी ले जा सकोगे। तुम्हारे जीवन का उद्देश यह न हो कि तुम विवाह करके विवाहित-जीवन का आनन्द लूटो; बल्कि यह हो कि अपने कि अपने निर्मल और प्रेममय जीवन द्वारा

संसार में प्रेम और सत्य का प्रचार करो। विवाह का उद्देश ही यह है कि पति-पत्नी एक दूसरे को इस उद्देश की पूर्ति में आगे बढ़ने में सहायता करें।

सबसे अधिक स्वार्थी और अपराधी जीवन उन दो का होता है जो केवल जीवन का आनन्द लूटने के लिए विवाह बद्ध होते हैं। इसके विपरीत सर्वश्रेष्ठ जीवन उन स्त्री-पुरुषों का होता है जो संसार में सत्य और प्रेम के प्रचार द्वारा परमात्मा की सेवा करने के लिए जीते और वैवाहिक बधन में बँधते हैं।

इसलिए सावधान रहो कि कहीं गफलत न हो। दोनों रास्ते यों तो एक-से ही दीखते हैं, पर हैं बिलकुल जुदे-जुदे। मनुष्य सर्वोत्कृष्ट रास्ते को ही क्यों न चुने? अपने सर्वस्व को उसमे तल्लीन कर दे। थोड़ी सी संकल्प शक्ति से काम न चलेगा।

× × × ×

बेशक, प्रत्येक चतुर व्यक्ति, जिसे अच्छी तरह जीने की इच्छा है, जरूर शादी करे। पर प्रेम करके नहीं, हिसाब लगाकर उसे शादी करनी चाहिए। स्पष्ट ही इन दो शब्दों का एक दूसरे से बिलकुल उलटा लगाया जाय, वह अर्थ नहीं जो आम तौर पर प्रचलित है।

अर्थात् वैषयिक प्रेम की पूर्ति के लिए नहीं, बल्कि इस बात का हिसाब लगाकर मनुष्य को शादी करनी चाहिए कि मेरा भावी साथी मनुष्योचित जीवन व्यतीत करने में मुझे कहाँ तक सहायक या बाधक होगा?

भाई, सब बातें छोड़ दो। शादी करने के पहले बीस नहीं, सौ बार अच्छी तरह विचार कर लो। एक नीतिमान् व्यक्ति के लिए विषय-जाल में पड़कर शादी कर लेना अत्यन्त हानिकर है। मनुष्य को उसी बेबसी के साथ शादी करनी चाहिए, जितनी बेबसी के साथ वह मृत्यु को प्राप्त होता है। अर्थात् जब कोई मार्ग ही न रह जाय तभी वह शादी करे।

× × × ×

मृत्यु के पश्चात्, समय की दृष्टि से, विवाह के समान अपरिवर्तनीय और महत्त्वपूर्ण और कोई वस्तु नहीं। मृत्यु के समान विवाह भी वही अच्छा है, जो अनिवार्य हो। स्वेच्छापूर्ण मृत्यु के समान स्वेच्छापूर्ण विवाह भी बुरा होता है। वह विवाह बुरा नहीं, जिसे हम टाल ही नहीं सकते।

× × × ×

विवाह को टालने की गुञ्जाइश होते हुए भी जो शादी करते हैं, उनकी तुलना मैं उन लोगों से करता हूँ, जो ठोकर खाने के पहले ही ज़मीन पर लोट जाते हैं। यदि मनुष्य सचमुच गिर पड़े तो कोई उपाय भी नहीं रह जाता। पर ख्वामख्वाह क्यों गिरा जाय ?

× × × ×

विवाह का प्रश्न वास्तव में इतना सरल नहीं, जितना कि दीख पड़ता है। 'प्रेम' करना एक ग़लत रास्ता है। पर विवाह विषयक गहरे विचारों में पड़ जाना दूसरा विमार्ग है। आप

कहते हैं—मनुष्य को पहली ही लड़की से शादी कर लेनी चाहिए, अर्थात् मनुष्य को अपने सुख का ख़याल छोड़ देना चाहिए, यही न ? तब इसके मानी तो यह हुए कि अपने को भाग्य के हाथों मे सौंप दें और अपनी पसन्दगी को अलग रख कर दूसरे के द्वारा किये गये अपने चुनाव में ही संतोष मान लें। उलझनों से भरी हुई पापमय अवस्था में हम अविवेक से नहीं चल सकते, क्योंकि यदि हम बलपूर्वक अपनी परिस्थिति को तोड़ने की कोशिश करने लगें तो दूसरों को कष्ट पहुँचता है, पर यदि भावुकता आदमी को एक उलझन में डालती हो, तो कोरी सिद्धान्त-प्रियता मनुष्य को इस प्रश्न के और भी जटिल हिस्से मे पहुँचा देगी। सबसे सरल उपाय तो यह है कि मनुष्य को किसी मध्यवर्ती पदार्थ को अपना ध्येय या उद्देश्य न बनाना चाहिए, बल्कि हमेशा श्रेष्ठ, सदाचारयुक्त जीवन को ही अपना ध्येय बनाये रखना चाहिए और उसकी ओर शांतिपूर्वक कदम बढ़ाते जाना चाहिए। ऐसा करने से निश्चय ही एक समय ऐसा आवेगा और संयोगों का एकीकरण भी इस तरह होगा कि मनुष्य के लिए अविवाहित रहना असंभव हो जायगा। यह मार्ग अधिक सुरक्षित है। इसके अवलम्बन से न तो मनुष्य ग़लती ही करेगा और न पाप का भागीदार ही हो सकता है।

× × × ×

विवाह के विषय में लोकमत तो ज़ाहिर ही है। "यदि आजीविका के साधनो को प्राप्त किये बिना ही लोग शादियाँ

करने लग जाँय तो दो-चार साल के अन्दर ही बच्चों, दरिद्रता और कष्टों की फसलें आने लगेगी। दस-बारह साल के बाद कलह, एक दूसरे के दोषों को ढूँढ़ना और प्रत्यक्ष नरक का निवास उस परिवार में हो जायगा।" समष्टि रूप से यह परम्परागत लोकमत बिलकुल ठीक है। यदि विवाह करनेवालों का कोई दूसरा अदरूनी हेतु न हो, जो कि उनके परीक्षकों को ज्ञात न हो, तब तो उसका भविष्य-कथन भी सच्चा-सच्चा साबित होता है। यदि ऐसा कोई उद्देश्य हो तब तो अच्छा है। पर उसका केवल बुद्धि-गत होना ही काफ़ी नहीं, कार्य में, जीवन में भी परिणाम होना आवश्यक है। मनुष्य को अपने जीवन में इसकी पूर्ति के लिए एकसी व्याकुलता होनी चाहिए। यदि यह उद्देश्य है तब तो ठीक है, वे लोकमत को ग़लत सिद्ध कर सकेंगे। अन्यथा उनका जीवन अवश्य ही दुःखमय सिद्ध हुए बिना न रहेगा।

× × × ×

तुम्हारा सम्मिलन दो कारणों से हुआ है। एक तो अपनी श्रद्धा—विश्वास—और दूसरे प्रेम के कारण। मेरा तो ख्याल है, इनमें से एक भी काफी है। सच्चा सम्मिलन सच्चे निर्मल प्रेम में है। यदि यह सच्चा प्रेम हो और उससे भावुक प्रेम भी उत्पन्न हो गया हो, तब तो और भी अच्छा है। वह और भी अधिक मजबूत हो जाता है। यदि केवल भावुक प्रेम ही हो, तो वह भी बुरा नहीं है। यद्यपि उसमें अच्छाई तो कुछ भी नहीं है, फिर भी यह एक चलने योग्य बात है। निश्चय स्वभाव और महान्

यत्नों के बल पर मनुष्य ऐसे प्रेम से भी काम चला लेता है। पर जहाँ ये दोनों न हों, वहाँ तो नि.सन्देह बड़ी बुरी हालत होती होगी। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि मनुष्य अपने साथ बहुत सख्ती करके यह देख ले कि किस प्रेम के द्वारा उसका हृदय आन्दोलित हो रहा है।

उपन्यासकार अपने उपन्यासों का अन्त अक्सर नायक-नायिका के विवाह में करते हैं। यथार्थ में उनको विवाह से अपना उपन्यास शुरू करना चाहिए और अन्त विवाह-बन्धनों को तोडने मे ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करने का आदर्श पेश करके करना चाहिए। नहीं तो मानव-जीवन का चित्र खींचकर विवाह तक समाप्त करना ठीक ऐसा ही भद्दा मालूम होता है, जैसा कि एक मुसाफिर की यात्रा का वर्णन करते-करते जहाँ चोर उसे लूटने लगें वहीं कहानी को छोड़ दिया जाय।

× × ×

धर्म-ग्रन्थ में विवाह की आज्ञा नहीं है। उसमें तो विवाह का निषेध ही है। अनीति, विलास तथा अनेक स्त्री-सभोग की कड़े-से-कड़े शब्दों में निन्दा अलबत्ते की गयी है। विवाह-संस्था का तो उसमे उल्लेख भी नहीं है। हाँ, पादरीशाही जरूर उसका समर्थन करती है। 'जच्चियस' का आगमन जिस तरह करों का समर्थन करता है उसी तरह 'काना' का बेहूदा चमत्कार भी विवाह-सस्कार का समर्थन करता है।

× × ×

हाँ, मेरा खयाल है कि विवाह-संस्था ईसाई-धर्म की संस्था नही है। ईसा ने कभी शादी नहीं की, न उसके शिष्यों ने कभी विवाह किया। उसने विवाह की स्थापना भी तो नहीं की, बल्कि उसने लोगों से जिनमें से कुछ विवाहित थे और कुछ अविवाहित, यही कहा था कि वे अपनी पत्नियों की बदला-बदली (तलाक) न करें, जैसा कि मूसा के धर्मादेश के अनुसार वे कर रहे थे। (मेथ्यू : अध्याय ५) अविवाहित लोगों से उसने कहा था कि वे यथासम्भव शादी न करें। (मेथ्यू अध्याय १६, पद्य १०-१२) और विवाहित-अविवाहित दोनों से उसने यही कहा था कि स्त्री को भोग-सामग्री समझना बड़ा पाप है। (मेथ्यू अध्याय ५, पद्य २८) कहने की आवश्यकता नहीं कि यही स्त्रियों को भी पुरुषों के विषय में समझना चाहिए।

इससे हम निम्न व्यावहारिक नतीजों पर पहुँचते हैं—

जनता में जो यह धारणा फैली हुई है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष को विवाह अवश्य करना चाहिए, उसको त्याग कर स्त्री-पुरुषों को यह मानना चाहिए कि प्रत्येक स्त्री वा पुरुष के लिए आवश्यक है कि वह अपनी पवित्रता की रक्षा करे, जिससे अपनी तमाम शक्तियों को परमात्मा की सेवा में अर्पण करने में उसके मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट न हो।

किसी भी स्त्री वा पुरुष का पतन (शरीर-सम्बन्ध) एक ऐसी गलती-मात्र न समझी जाय कि जो किसी दूसरे व्यक्ति (स्त्री या पुरुष) के साथ विवाह कर लेने पर सुधर सकती है।

न वह अपनी आवश्यकताओं की क्षय-पूर्ति ही समझी जाय। बल्कि किसी भी व्यक्ति का अन्य स्त्री या पुरुष के साथ शारीरिक सम्बन्ध होते ही वह सम्बन्ध एक अटूट विवाह बन्धन का द्वार ही समझा जाय (मैथ्यू अध्याय १६, पद्य ४-६), जो अपने-आप उस पाप से मुक्त होने के लिए उन व्यक्तियों को कर्तव्य का एक गम्भीर आदेश देता है।

विवाह अपनी वैषयिकता को तुष्ट करने का एक साधन नहीं, बल्कि एक ऐसा पाप समझा जाय, जिसका प्रायश्चित्त करना परमावश्यक है।

इस पाप का इस तरह प्रायश्चित्त हो सकता है—पति और पत्नी दोनों विलासिता और विकार से मुक्त होने की कोशिश करें और इसमें एक-दूसरे की सहायता करें तथा आपस मे उस पवित्र सम्बन्ध की स्थापना करने की भी कोशिश करें, जो भाई और बहन के बीच होता है, न कि प्रेमी और प्रेमिका के बीच। दूसरे वे अपनी सारी शक्ति इस विवाह के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले अपने बच्चों को ईश्वर की सेवा के लिए सुशिक्षित और सुसंस्कृत बनाने में लगा दें।

× × ×

ईसाई-धर्म के अनुसार न तो कभी विवाह हुआ है और न हो ही सकता है, क्योंकि धर्म विवाह को आज्ञा ही नहीं करता, ठीक उसी तरह जैसे कि धन-संचय करने का भी आदेश नहीं करता। हाँ, इन दोनों का सदुपयोग करने पर अलबत्ता वह ज़ोर देता है।

इस प्रकार के विवाह में तथा उस विवाह में जो इस समय जारी है, बहुत बड़ा अन्तर है। लोग अब भी बराबर विवाह करते रहेंगे, माता-पिता अपने लड़के-लड़कियों के विवाह का अब भी प्रबन्ध करते रहेंगे। परन्तु इस विवाह में बहुत बड़ा अन्तर हो जाता है, जिस समय इन्द्रियों की तृप्ति करना उचित, धर्म-शास्त्रानुकूल, और संसार का सबसे बड़ा सुख समझा जाता है—अथवा जिस समय वह पाप समझा जाता है। एक ईसाई धर्मानुयायी मनुष्य केवल उसी समय विवाह करेगा जिस समय वह समझता है कि उसके लिए कोई दूसरा चारा नहीं है; और विवाह कर चुकने के बाद वह विषय-वासना में लिप्त न हो जायगा, किन्तु वह ( पुरुष और स्त्री दोनों ) उसके दमन करने का ही प्रयत्न करता रहेगा। अपनी सन्तान के आध्यात्मिक कल्याण की इच्छा रखनेवाले माता-पिता अपने हर एक बच्चे का विवाह कर देना अनिवार्य न समझेंगे, वरन् उनका विवाह केवल उसी समय करेंगे—अर्थात् उनके पतन में सहायक होंगे या उसकी सलाह देंगे—जिस समय वे देखेंगे कि उनमें ( लड़के लड़कियों में ) आत्म-निग्रह करने की सामर्थ्य नहीं है, और जिस समय यह स्पष्ट हो जायगा कि उनके लिए निर्वाह का अन्य कोई मार्ग नहीं है। जिन लोगों का विवाह हो गया है, वे जैसा कि इस समय के लोग करते हैं, अधिकाधिक सन्तान की इच्छा न करेंगे; किन्तु इसके विपरीत अपना जीवन शुद्ध और पवित्र बनाने का प्रयत्न करते हुए इस बात में प्रसन्न होंगे कि उनके बहुत कम

सन्तानें हैं, और यह कि वे अपनी सारी शक्ति अपने बच्चों की शिक्षा में, जो उन्हें अब तक पैदा हुए हैं, तथा दूसरे लोगों के उन बच्चों की सहायता और शिक्षा मे व्यय कर सकते हैं जिनकी सहायता वे कर सकते हैं, यदि वे परमेश्वर के भावी सेवकों की शिक्षा-द्वारा उस परम पिता की सेवा करना चाहते हैं।

यह अन्तर वैसा ही होगा जैसा कि उन आदमियों में जो भोजन केवल इसीलिए करते हैं कि बिना इसके उनका काम चल ही नहीं सकता और इसलिए उसके तैयार करने में और खाने में जितना कम समय लग सकता है लगाते हैं तथा उन आदमियों मे है जो केवल खाने के लिए ही जीते हैं और इसलिए नाना प्रकार के भोजनों का आविष्कार करना, उसकी सामग्री जुटाना, भूख का बढ़ाना और अधिकाधिक मात्रा में भोजन करना ही अपने जीवन का मुख्य लक्ष्य समझते हैं, जैसा कि रोमन लोगों ने इसे अन्तिम सीमा तक पहुँचा दिया था जो एक बार भोजन कर चुकने के बाद वमन-कारक औषधि खा लेते थे जिससे दूसरी बार फौरन् ही फिर खा सकें।

यदि मनुष्य केवल इतनी बात अच्छी तरह और साफ तौर से समझ ले कि कामेन्द्रिय की तृप्ति करना एक नैतिक पतन और पाप है, और किसी एक स्त्री के साथ ताल्लुक हो जाना एक ऐसी बात है, जो तोड़ा नहीं जा सकता और जो उस पाप का प्रायश्चित्त है, तो यह बिल्कुल स्पष्ट है कि इस प्रकार के विचार को ही सामने रखकर मानव-समाज के अन्दर ब्रह्मचर्य की वृद्धि हो सकती है।

जिस समय मैं यह बतलाता हूँ कि विवाहित मनुष्यों को किस प्रकार रहना चाहिए, तो इससे मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि मै स्वयं वैसा ही रहा हूँ या इस समय रहता हूँ जैसा किमु मे रहना चाहिए था। उसके विपरीत मै स्वयं अपने अनुभव से इस बात को निश्चय रूप से जानता हूँ कि मनुष्य का जीवन कैसा होना चाहिए, केवल इसलिए कि मेरा जीवन ऐसा रहा है जैसा कि किसी मनुष्य का नहीं होना चाहिए।

मै अपनी पहले कही हुई किसी बात को वापस नहीं ले रहा हूँ, किन्तु जो कुछ मैंने कहा है उसको और ज़ोर के साथ कहता हूँ। परन्तु यह बात सच है कि इसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। इसकी आवश्यकता इसलिए है कि हमारा जीवन उस आदर्श से इतना दूर है जो प्रत्येक मनुष्य के जीवन का होना चाहिए (जैसा कि हमारी अन्तरात्मा को स्वयं अनुभव होता है और जैसा कि ईसा-मसीह ने बतलाया है) कि इस सम्बन्ध में सत्य बात को सुनकर हम चौंक पड़ते हैं (इस बात को मैं स्वयं अपने अनुभव से जानता हूँ) ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार एक धर्मपरायण व्यापारी जो खूब धन जमा कर रहा है, इस बात को सुनकर चौंक पड़ेगा कि किसी मनुष्य को अपने परिवार के लिए धन जमा न करना चाहिए और न गिर्जा-घरों के लिए घण्टे बनवाने चाहिए, किन्तु पाप से मुक्ति पाने के लिए उसे चाहिए कि वह अपना सर्वस्व दान कर दे।

इस विषय में मै जो कुछ सोचता हूँ उसे नीचे लिख देता

हूँ। यद्यपि उनमें कोई भ्रम नहीं है—

यह 'प्रणय' का भाव—जो मनुष्य को अपनी पूर्ण-शक्ति के साथ वश में किये हुए है—उन दो स्त्री-पुरुषों में उत्पन्न होता है जिनमें अभी तक परस्पर समागम नहीं हुआ है। इस प्रणय-भाव से प्रेरित होकर ही लोग विवाह करते हैं* और इस विवाह का परिणाम यह होता है कि उनको संतान उत्पन्न होती है। गर्भावस्था का समय आरम्भ होता है और इस कारण पति और पत्नी के बीच परस्पर सहवास ( रति ) की इच्छा कम होने लगती है—यह एक ऐसी शिथिलता है जो बिल्कुल स्पष्ट हो सकती है और सहवास को एक-दम रोक सकती है, जैसा कि पशुओं मे होता है, यदि मनुष्य ऐसे सहवास को एक न्यायोचित और आनन्द की वस्तु न समझता होता। इस शिथिलता से बालक के लालन-पालन और उनकी वृद्धि के लिए समय मिलता है और जब तक बालक दूध पीना छोड़ नहीं देता, तब तक यह क्रम बना रहता है और सहवास का यह शैथिल्य जारी रहता है, और एक उच्चकोटि के विवाहित जीवन में ( यहीं पर मनुष्यों तथा पशुओं मे भेद हो जाता है। उन्हीं व्यक्तियों के अन्दर परस्पर फिर एक-दूसरे के प्रति प्रेम का आकर्षण होता है!

हम इससे चाहे कितना भी दूर क्यों न रहें, इसमें सन्देह नहीं कि यह एक ऐसी बात है जो वास्तव में होनी चाहिए। और यही कारण है कि प्रथम तो जिस समय गर्भाधान असम्भव

*अभी भारत में ऐसा नहीं है। संपा०

होता है ( अर्थात् जिस समय स्त्री गर्भिणी होती है ) उस समय रति-क्रिया कोई उपयुक्त अर्थ नहीं रखती और वह केवल विषय-सुख ( कामेन्द्रिय की तृप्ति ) को छोड़ और कुछ भी नहीं है जो एक बहुत ही कुत्सित और लज्जाजनक कर्म है, जैसा कि प्रत्येक विचारवान् एवं शुद्ध-मति मनुष्य पर प्रकट है। यह एक ऐसा घृणित कर्म है, जिसकी तुलना काम के वशीभूत हो नीचातिनीच प्रकृति-विरुद्ध मैथुन आदि से की जा सकती है। इस प्रकार की विषय-वासना में लिप्त मनुष्य पशु से भी अधिक विवेकहीन ( निर्बुद्ध ) हो जाता है, क्योंकि वह अपनी बुद्धि का प्रयोग बुद्धि के ही नियमों ( कानून ) का उल्लंघन करने में करता है। दूसरे सब लोग इस बात को जानते और मानते हैं कि रति-क्रिया ( मैथुन ) से मनुष्य निर्बल और निस्तेज हो जाता है, यहाँ तक कि उसकी सार-भूत मानवीय शक्ति ( आत्म-बल ) भी निर्बल हो जाती है। इस सम्बन्ध में लोगों के वर्तमान आचार का समर्थन करनेवाले यह कहेंगे कि 'परिमित' अर्थात् नियमन से काम लेना चाहिए। ( जैसा कि आयुर्वेदाचार्यों ने कहा है—अनुवादक ); परन्तु जिस समय बुद्धि-प्रतिपादित नियमों का ही उल्लंघन किया जाता है उस समय वास्तविक 'परिमितता' हो ही नहीं सकती। हाँ, 'परिमित' से ( इस विषय में इस शब्द का भी उच्चारण करना कितना दुःखद प्रतीत होता है ) काम लेते समय असंयम ( व्यभिचार ) से मनुष्य को पहुँचानेवाली हानि की मात्रा में कमी हो सकती है। ( सिवाय उस समय के, जबकि

स्त्री गर्भवती, है रति करना असंयम या व्यभिचार ) है, यदि मनुष्य एक पत्नी-व्रत हो, अर्थात् एक स्त्री को छोड अन्य किसी को न जाने। परन्तु पति के लिए जो नियमन है, वही पत्नी के लिए व्यभिचार है जिस समय कि वह गर्भवती हो अथवा शिशु-पालन ( बालक का लालन-पालन करने ) में लगी हो।

मैं समझता हूँ कि स्त्रियों के इस क़दर पिछड़े होने तथा उनमें मूर्छा आदि भयकर रोगों के होने का कारण मुख्यशः यही है। यही बात है जिससे स्त्रियों को बचाने की आवश्यकता है, जिससे वे पुरुष की सच्ची सहचरी बन सकें, उसके समान ही उन्नति कर सकें और शैतान की नहीं, वरन् ईश्वर की सच्ची सेविका ( उपासिका ) बन सकें। यह एक दूरवर्त्ती किन्तु ऊँचा आदर्श है। तो फिर क्या कारण है कि मनुष्य इसके लिए प्रयत्न नहीं करता ?

मैं इस विषय का एक मानसिक चित्र खींचता हूँ कि विवाह इस प्रकार का होना चाहिए। एक स्त्री और एक पुरुष परस्पर एक दूसरे पर आसक्त हो जाते हैं। यहाँ तक कि वे अपने आपको सँभाल नहीं सकते और उनमें समागम हो जाता है। एक बालक भी उत्पन्न हो जाता है, और वे दोनों ( पति-पत्नी ) उन तमाम बातों से दूर रहते हुए जो कि उस बालक की वृद्धि और उसके पोषण मे बाधा पहुँचाती हों, तमाम विषय-वासनाओं एवं शारीरिक प्रलोभनों से दूर रहते हुए, उनको उत्पन्न करते और बढ़ाते हुए नहीं, जैसा कि इस समय हो रहा है, भाई और बहन की

भाँति रहते हैं। इस समय यह होता है कि पति जो पहले से ही भ्रष्ट-चरित्र हो चुका है, अपनी इन कुवासनाओं का संचार अपनी पत्नी में करता है, उसमें भी विषय-वासना का विष फैलाता है, और उसे एक ही साथ एक रमणी, एक अवसन्न-गात्र माता तथा एक रोग-ग्रस्त, चिड़चिड़ी और क्षीण-काय मूर्च्छावान व्यक्ति का-सा जीवन बिताने का असह्य भार वहन करने के लिए विवश करता है। वह पति रमणी की अवस्था में उसे प्यार करता है, एक माता की अवस्था में उससे दूर रहता है और उसके उग्र-स्वभाव तथा मूर्च्छा-रोग के कारण, जिनको उसी ने पैदा किया है और कर रहा है, उससे घृणा करता है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यही उन समस्त दुःखों की कुञ्जी है जो अधिकांश परिवारों में अन्तर्हित ( छिपे हुए ) हैं। इसी प्रकार मैं उन स्त्री-पुरुषों ( पति और पत्नी ) का चरित्र-चित्रण करता हूँ जो भाई और बहन की भाँति रहते हैं। जिस समय वह प्रशान्तावस्था में ( गर्भवती ) होती है, वह बालक जनती है, विना किसी विघ्न-बाधा के उसका भरण-पोषण और लालन-पालन करती है, और साथ ही इसके उसे नैतिक शिक्षा भी देती है; और केवल उस समय जबकि वह गर्भ से मुक्त होती है, फिर वे परस्पर प्रेम करते हैं ( आसक्त होते हैं )। यह अवस्था लगभग एक सप्ताह के रहती है, और इसके बाद फिर शान्ति हो जाती है।

मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि आसक्ति ( Being in love ) वह बाष्प-शक्ति है जो सारे यंत्र ( एंजिन ) को विदीर्ण कर

सकती है, यदि रक्षण-कपाट ( Saf ty Valve ) काम न करे। यह ढक्कन ( कपाट ) केवल उसी समय खुलता है जब उस पर बहुत बड़ा दबाव पड़ता है। बाकी वक्तों में वह बड़ी मज़बूती और तरकीब के साथ बन्द रहता है। इसलिए हमारा काम यह होना चाहिए कि हम उस पर जितना दबाव डाल सकते हैं डालकर उसे जितना मज़बूत हो सके बन्द रखें, जिससे वह खुल न सके। यही भाव है जिसमे हम इस वाक्य को समझते हैं, "जो इसके ग्रहण करने की योग्यता रखता हो, उसीको इसे प्राप्त होने दो" ( मैथ्यू १६-१२ ) साराश यह कि प्रत्येक मनुष्य को विवाह न करने का ही प्रयत्न करना चाहिए, परन्तु जिस समय वह विवाह कर चुके तो अपनी स्त्री के साथ वैसे ही रहे जैसे भाई और बहन रहते हैं। वाष्प-शक्ति का सचय होगा। कपाट ( ढक्कन ) ऊपर उठेंगे (खुलेंगे) किन्तु हमें उन्हें स्वयं नहीं खोलना चाहिए, जैसा कि हम उस समय करते हैं जब रति-क्रिया को धर्म-विहित सुख की वस्तु समझते हैं। इसकी आज्ञा केवल उसी समय है जब हम अपने आपको सँभाल न सकते हों, और जिस समय वह हमारी इच्छा के विरुद्ध स्फुटित हो निकले।

"परन्तु कोई मनुष्य इस बात का निर्णय कैसे कर सकता है कि किस समय वह आत्म-निग्रह नहीं कर सकता (अपने आपको सँभाल नही सकता) ?"

इस तरह के कितने ही प्रश्न सुनने में आते हैं और उनके उत्तर कितने असभव प्रतीत होते हैं ? और तो भी वे कितने

सरल हैं, जब कोई मनुष्य अपने लिए आप उन्हें हल करता है, दूसरों के लिए दूसरे लोग हल नहीं करते। दूसरों के लिए हल करने में मनुष्य केवल थोड़ी दूर तक पहुँच पाता है। एक वृद्ध पुरुष एक वेश्या के साथ प्रेम करने लगता है और उसके साथ खूब रब्त-जब्त बढ़ाता है—यह कितना घोर निद्य कर्म है; एक युवा पुरुष भी ऐसा ही करता है—यह उसकी अपेक्षा कम निन्द्य है। एक वृद्ध पुरुष काम के वशीभूत होकर विवाह के लिए किसी स्त्री से अनुराग करता है—यह काम भी निन्द्य है, किन्तु एक युवा पुरुष के किसी वेश्या के साथ अनुराग करने की अपेक्षा कम निन्द्य है। एक युवा पुरुष अपनी स्त्री के साथ कामासक्त होकर प्रेम करता है—यह अपेक्षाकृत कुछ कम निन्द्य है, यद्यपि अप्रिय यह भी अवश्य है। ऐसा ही क्रम दूसरों के सम्बन्ध में भी है, और हम सब लोग इस बात को खूब अच्छी तरह जानते हैं, विशेष कर युवा पुरुष और वे बालक जिनका चरित्र अभी निष्कलंक है। परन्तु एक मनुष्य के लिए एक दूसरा भी विचार है। ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले प्रत्येक पुरुष और स्त्री को यह ज्ञात है (यद्यपि मिथ्या भावनाओं में पड़कर उसका यह ज्ञान कभी कभी निष्प्रभ हो जाता है) कि पवित्रता की कद्र करनी चाहिए, यह कि प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर उसके बनाये रखने की अभिलाषा होती है, और यदि किसी दशा में वह नष्ट हो जाय, तो इससे कितना संताप और लज्जा होती है ! अन्तःकरण से बराबर एक आवाज़ आती रहती है, जो पदस्खलित होने के बाद और हमेशा

लोगों को स्पष्ट-रूप से यह बतलाया करती है कि यह अनुचित और लज्जास्पद बात है। [यह सब मनुष्य के ज्ञान और बुद्धि पर निर्भर है।]

संसार में काम-वासना से प्रेरित हो किसी से प्रेम करना (इश्कबाज़ी) एक बहुत अच्छी चीज़ समझा जाता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार रक्षण-कपाट (Saftey Valve) का खोल देना और भाप का निकाल देना समझे जा सकते हैं। परन्तु ईश्वरीय आज्ञा के अनुसार, केवल शुद्ध और पवित्र जीवन व्यतीत करना, अपनी बुद्धि को ईश्वरोपासना में लगाना अर्थात् मनुष्यों से उनकी आत्माओं, तथा उन सबमें सबसे पहली और सबसे नजदीकी आत्मा अपनी धर्म-पत्नी से प्रेम करना, उसको सत्य का ज्ञान प्राप्त करने में सहायता देना, उसको अपनी कामाग्नि बुझाने का साधन-मात्र बनाकर उसके बुद्धि और बल का दुरुपयोग न करना ही एक शुद्ध और पवित्र एव उत्तम कर्म है। सारांश यह, कि उस बाष्प-शक्ति (स्टीम) का प्रयोग काम करने के लिए ही किया जाय, और उसको स्फुटित होने ( निकल जाने ) से रोकने के लिए जितना प्रयत्न हो सके किया जाय।

"परन्तु ऐसा करने से तो मानव-सृष्टि का अन्त हो जायगा।" सर्वप्रथम तो, लोग स्त्री-पुरुष के इस संसर्ग को रोकने का चाहे जितना प्रयत्न क्यों न करें, ये रक्षण-कपाट (Safety Valve) उस समय तक बने ही रहेंगे, जब तक कि उनकी आवश्यकता है, और इसलिए बच्चे पैदा ही होते रहेंगे। इसके भी अलावा हमें

झूठ बोलने की क्या आवश्यकता ? क्या जिस समय हम स्त्री पुरुषों के समागम (रीति-क्रिया) का समर्थन करने लगते हैं उस समय सचमुच हम सन्तान उत्पन्न करने के लिए उत्सुक होते हैं ? हमें तो अपने आनन्द (मज़े) का ही ख़याल होता है। और हमें साफ़-साफ़ ऐसा ही कह भी देना चाहिए। क्या मानव-सृष्टि का क्रम रुक जायगा ? क्या मनुष्य-तनु-धारी प्राणी का इस संसार में नाम निशान न रह जायगा ? यह सब कैसी हृदय-विदारक और मर्म-भेदी बातें हैं ! विश्व-प्रलय से पूर्व के प्राणियों का कोई अस्तित्व नहीं रहा है, और उसी प्रकार यह निश्चय है कि मानव-सृष्टि का भी कोई न रह जायगा (यदि अमरता और अनंतता का विचार किया जाय)। इसका नाश भले ही हो जाय, पर यदि सच्चे प्रेम और प्रेमियों का अन्त न होगा, तो मुझे मनुष्य-नाश पर उतना ही दुःख होगा, जितना उन अनेक प्राणियों के नाश पर होता है जो एक समय इस पृथ्वी पर थे। और यदि मनुष्यों के विषय-सुख का परित्याग कर देने के कारण मानव-सृष्टि का लोप भी जाय, तो इस सच्चे प्रेम का अन्त न होगा, वरन् इसके विपरीत, उसकी वृद्धि इस अपरिमित परिणाम में हो जायगी कि जो प्राणी इस सच्चे प्रेम का अनुभव करते हैं उनके लिए सृष्टि की कोई आवश्यकता ही न रह जायगी।

शारीरिक प्रेम (विपाक्त प्रेम) की आवश्यकता केवल इसी काम के लिए है—यह कि मनुष्य के लिए यह संभावना बनी रहे कि वह उन्नति करके इन श्रेष्ठतर-प्राणियों के पद को प्राप्त कर सके।

इन तमाम बातों को, जो मैं बिना क्रम से ऊपर कह आया हूँ, पढ़ जाइए और सोचिए, जो कुछ मैं कहना चाहता था और जो कुछ मैंने कहा होता, किन्तु कह नहीं सका। ये विचार अकस्मात् उत्पन्न नहीं हुए—उनकी उत्पत्ति और परिपुष्टि मेरे अनुभव और जीवन से हुई है, और यदि ईश्वर ने चाहा तो मैं आगे चल कर इनको बहुत साफ-साफ और स्पष्टता के साथ प्रकट करने का प्रयत्न करूँगा।

पशु केवल उसी समय मैथुन करते हैं जब बच्चा पैदा करना होता है। पर अज्ञानी मनुष्य, जैसे कि हम सब लोग हैं, हमेशा मैथुन करता रहता है, और उसने इस मत का भी आविष्कार कर लिया है कि यह एक आवश्यकता है। और इस आविष्कृत आवश्यकता (अपनी ओर से उत्पन्न की गयी आवश्यकता) से वह गर्भ तथा शिशु-पालन की अवस्था में भी स्त्री को अपनी रमणी बनने के लिए विवश करता है, ( जो शरीर को अत्यधिक श्रान्त कर देने वाला और अस्वाभाविक है) और उसके जीवन का सत्यानाश करता है। हम लोगों ने स्वय अपनी ऐसी माँगों से स्त्रियों की विवेक-शक्ति का और उनके स्वधर्म का नाश कर दिया है, और इसकेबाद हम उनकी बुद्धि-हीनता की शिकायत करते हैं अथवा किताबों और विश्व-विद्यालयों से उनका उपचार कर उनको उन्नत बनाना चाहते हैं, उनका सुधार करना चाहते हैं। प्राणी-जीवन में मनुष्य पशु से भी गया-बीता हो गया है। अतः उसे यत्नपूर्वक उस प्राणी जीवन के समतल तक पहुँचाना होगा और जिस समय बुद्धियुक्त

जीवन का आरम्भ हो जाता है, उस समय वह आपसे आप ही प्राणी-पद को प्राप्त हो जाता है; अन्यथा, उसकी विवेक-बुद्धि का झुकाव उसके विकृत पाशविक जीवन की ओर हो जाता है।

मनुष्य और उसकी स्त्री (धर्म-पत्नी) के बीच रति-संबंधी प्रश्न—अर्थात् वह कहाँ तक उचित है—व्यावहारिक ईसाई-धर्म के प्रश्नों में सबसे अधिक महत्त्व रखता है, जो सम्पत्ति-संबंधी प्रश्न के समान है। वह अब भी मेरे दिमाग़ में चक्कर काट रहा है। इस प्रश्न का उत्तर इंजील में दिया गया है। इस सबन्ध मे ईसा ने जो निर्णय दिया है उससे हमारा जीवन इतना दूर है कि हम उसके अनुसार कार्य करना तो ठीक, उसे ठीक-ठीक समझ भी नहीं सकते। बाइबिल के मेथ्यू खण्ड के अध्याय १६ के पैरा ११ और १२ में कहा गया है, "परन्तु उसने उनसे कहा कि सब लोग इस वचन को ग्रहण नहीं कर सकते, सिवाय उन लोगों के कि जिनके लिये वह कहा गया है (जिनको वह दिया जाता है?)। क्योंकि कुछ षंढ अपनी माता के गर्भ से ही (नपुंसक) उत्पन्न हुए हैं और कुछ लोगों ने स्वर्ग के साम्राज्य के लिए अपने आपको क्लीब बना डाला है। जो इसके प्राप्त (ग्रहण) करने के योग्य है, उसे ही प्राप्त करने दो।"

क्या कारण है कि इस वाक्य का इतना और ऐसा गलत अर्थ किया गया है? उसके मानी तो साफ हैं। यदि मनुष्य पूछता है कि काम-शक्ति (काम-प्रवृत्ति) के सम्बन्ध में उसे क्या करना चाहिए? उसे किस बात की अभिलाषा करनी चाहिए? (अपनी

आधुनिक भाषा में) मनुष्य के लिए आदर्श क्या है? तो वह उत्तर देता है—"स्वर्ग का साम्राज्य प्राप्त करने के लिए नपुंसक—विषय-विमुख—बन जाओ और जिस मनुष्य को इसकी प्राप्ति हो जाती है, और जिसको इसकी प्राप्ति नहीं होती, उसके लिए भी यह अच्छा होगा कि वह उसके लिए प्रयत्न करे। जो इसके प्राप्त करने योग्य है उसेही प्राप्त करने दो।"

मैं समझता हूँ कि मनुष्य के कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि पुरुष और स्त्री दोनों पूर्ण ब्रह्मचारी-जीवन व्यतीत करने का उद्योग करते रहें और इसके पश्चात् उनके लिए इसका वही परिणाम होगा जो होना चाहिए। किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जब मनुष्य आवश्यकता से अधिक प्रयत्न करेगा तब वह आवश्यक उच्चता तक पहुँच सकेगा। परन्तु यदि इसके विपरीत मनुष्य जान-बूझकर शारीरिक सम्बन्ध के लिए ही प्रयत्न करता रहेगा, जैसा कि इस समय हम लोगों में होता है, चाहे वह विवाह के रूप में ही क्यों न हो, तो उसका उन बातों में फँस जाना (पतन हो जाना) अनिवार्य है जो अनुचित (अन्याय्य) और विकार-युक्त हैं। यदि मनुष्य विचार-पूर्वक अपने पेट के लिए ही नहीं वरन् आत्मा के लिए जीवित रहने का प्रयत्न करता रहे, तो भोजन के प्रति उसका भाव वही होगा जो होना चाहिए। परन्तु यदि मनुष्य पहले से ही अपने लिए सुस्वादु भोजन तैयार कर ले तो उसमें अनौचित्य (अन्याय) और दुराचार का उत्पन्न हो जाना अनिवार्य है।

विवाहित जीवन के सम्बन्ध में मैं बहुत-कुछ विचार करता रहा हूँ और कर रहा हूँ, और जैसा कि मेरे सम्बन्ध में हमेशा, जब कभी मैंने किसी गम्भीर विषय के ऊपर विचार करना आरम्भ किया है, होता रहा है मुझे बाहर से प्रोत्साहन और सहायता मिलती रही है।

अभी परसों मुझे अमेरिका से एलिस स्टॉक्हम एस. डी. नामक एक स्त्री चिकित्सक़ा (लेडी डाक्टर) द्वारा रचित "Toko-losy a book for every woman" (टॉकोलाजी हरएक स्त्री की किताब) नाम की पुस्तक प्राप्त हुई है। स्वास्थ्य की दृष्टि से यह पुस्तक बड़े मार्के की है और उसमें सबसे बड़े महत्त्व की जो बात है, वह यह है कि, उसमें एक अध्याय में उसी विषय का वर्णन है जिसके ऊपर हम लिख रहे हैं और उसमें इस प्रश्न का वही हल बतलाया गया है जो हम बतलाते हैं। जिस समय अन्धकार में पड़े हुए किसी मनुष्य को अपने निकट ही प्रकाश दिखलाई पड़ता है तो उसे बड़ी प्रसन्नता होती है। मेरे लिए मेरी आत्म-श्लाघा में, यह कहा जाता है कि मैंने अपना जीवन पशु की भाँति बिताया है, और मैं अब उसका पुनर्लाभ नहीं कर सकता—यह बड़े दुःख की बात है, क्योंकि यह कहा जायेगा कि "तुम्हारे जैसे एक मरणासन्न मनुष्य के लिए यह सब कुछ कहना बिल्कुल ठीक है, परन्तु तुम्हारा जीवन दूसरी तरह का रहा है जिस समय हम भी बुड्ढे होंगे हम भी यही कहेंगे।" पर मेरे पाप का प्रायश्चित्त अब इसी में है। एक मनुष्य समझता

है कि वह ईश्वर की आज्ञा को पूर्ण करने के लिए बिल्कुल अयोग्य है। परन्तु इस विचार से उसको आश्वासन मिलता है कि मैं अपने अनुभव से दूसरों को सचेत कर दूँ। यदि वे भी राह पर आ जायँ तो काफी है।

× × ×

"उपसंहार" के विषय में विचार करते हुए मैं सोचता था कि प्राचीन काल मे विवाह का अर्थ होता था, पत्नी को अपनी सम्पत्ति के तौर पर प्राप्त करना। फिर युद्ध या डाके डालकर भी स्त्री प्राप्त की जाती थी। मनुष्य ने स्त्री के विषय में किसी प्रकार का विचार नहीं किया। उसे केवल अपनी विषय-वासना को तृप्त करने का एक साधन मात्र समझा। बादशाहों के ज़नानख़ाने क्या हैं? इसीके जीते-जागते उदाहरण। एकगामी होने पर स्त्रियों की सख्या जरूर घट गयी, पर उनके सम्बन्ध मे पुरुष के चित्त में जो गलत कल्पना थी, वह नहीं गयी। यथार्थ में सम्बन्ध ठीक इसके विपरीत है। पुरुष हमेशा विषयोपभोग के योग्य रहता है और हमेशा इन्कार भी कर सकता है। पर स्त्री, जब कि वह कुमारी अवस्था को पार कर जाती है, और जब कि उसकी प्रकृति पुरुष-संयोग की चाह करती है, तब उसे अपने को रोकने में बड़ा कष्ट होता है। पर इतनी प्रबल इच्छा उसे दो-दो साल में शायद एक-एक बार ही होती है। इसलिए अपनी विषय-वासना को तृप्त करने का यदि किसी को अधिकार हो तो वह पुरुष को कदापि नहीं, स्त्री को ही है। स्त्री के लिए विषय-

वासना की तृप्ति एक मामूली आनन्द नहीं है, जैसा कि पुरुष के लिए है; बल्कि वह तो उसके दुःख के हाथों में अपने को सौंप देती है। उसका विषयोपभोग भावी दुःख, कष्ट और यातनाओं से लदा हुआ होता है। मैं सोचता हूँ कि प्रत्येक मनुष्य इसी दृष्टि से विवाह का विचार करे। वे आपस में एक दूसरे के प्रति आध्यात्मिक प्रेम करें और प्रतिज्ञा करें कि यदि उनके संतति हो तो परस्पर संयोग से ही हो और यदि ब्रह्मचर्य भंग होने का अवसर आवे ही, तो वह पुरुष की इच्छा के कारण नहीं, स्त्री के प्रार्थना करने पर ही आवे।

× × ×

तुम अपने बच्चों के पिता से अपील करना नहीं चाहती? यह विचार ग़लत है। तुम लिखती हो—'मैं न चाहती हूँ और न अपील कर ही सकती हूँ।' पर स्त्री और पुरुष का वह सम्बन्ध अटूट है जिनके कारण उन्हें बच्चे पैदा हो जाते हैं। भले ही पादरियों के पच्चों का संस्कार उनपर हुआ हो या न भी हुआ हो। इसलिए तुम्हारे बच्चों का पिता विवाहित हो या अविवाहित, भला हो या बुरा हो, उसने तुम्हारा अपमान किया हो या न भी किया हो, मेरा खयाल है कि तुम्हें उसके पास जाना चाहिए और यदि उसने लापरवाही की है तो उसे अपने कर्त्तव्य का ज्ञान करा देना चाहिए। यदि वह तुम्हारी प्रार्थना पर विचार न करे, तुम्हें झिड़क दे, तुम्हारा अपमान करे तो भी तुम अपने, अपने बच्चों के और परमात्मा के नजदीक इस बात के ज़िम्मेदार

हो कि तुम उसे फिर हर तरह समझाने की कोशिश करो कि वह अपने भले के लिए अपने कर्त्तव्य का पालन करे। हाँ, जाओ, जरूर जाओ, प्यार के साथ, ज़ोर के साथ, युक्तिपूर्वक, मधुरता से उसे समझाओ, जैसा कि हमारे धर्म-ग्रन्थ में उस विधवा ने जज को समझाया है। यह मेरा प्रामाणिक विचार और चिन्तनपूर्वक दिया हुआ मत है। तुम चाहे इसका अनुसरण करो या इसपर ध्यान न दो। तुमपर इसे प्रकट कर देना मैंने अपना धर्म समझा है।

× × ×

आध्यात्मिक आकर्षण से शून्य स्त्री-पुरुषों का शारीरिक संयम परमात्मा का अपने सत्य को प्रकट करने का प्रयोग है। इस संयम द्वारा वह कसौटी पर चढ़ता है और मजबूत होता है। यदि वह कमज़ोर होता है तो उसको ज्ञान मिलता है।

× × ×

मुझे तुम्हारा पत्र मिला। उसमें लिखी शङ्काओं का मै बड़ी खुशी के साथ समाधान करूँगा। ये शङ्कायें हमारे दिल में कई बार पैदा होती हैं और वैसी ही रह जाती हैं।

ओल्ड टेस्टामेन्ट और गॉस्पेल में लिखा है कि पति और पत्नी दो नहीं, एक ही प्राणी हैं। यह सत्य है। इसलिए नहीं कि वे परमात्मा के वचन समझे जाते हैं; पर वह इस असंदिग्ध सत्य का समर्थन करता है कि स्त्री-पुरुप का एकीकरण अवश्य ही विशेष रहस्य-पूर्ण और अन्य सयोगों से भिन्न होगा कि जिसके

फलस्वरूप एक नवीन प्राणी पैदा होता है। एक ख़ास अर्थ में वे दोनों अपनी भिन्नता को भूल जाते हैं, अभिन्न हो जाते हैं।

इसलिए मैं कहता हूँ कि इस रहस्यपूर्ण रीति से जो अभिन्न बन गये हैं, उनको संयमशील जीवन के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील रहना चाहिए। इनमें से जिस किसी के विचार अधिक सुसंस्कृत हैं, वह दूसरे की हर तरह से शक्ति भर सहायता करे। सादा जीवन, अपने प्रत्यक्ष उदाहरण और उपदेशों द्वारा कोशिश करे। पर जबतक दोनों के हृदय में इस पवित्र इच्छा का उदय नहीं होता दोनों अपने सयुक्त जीवन के पापों के बोझ को उठावें।

अपनी विकारवशता के कारण हम कई बार ऐसे बुरे-बुरे काम कर डालते हैं कि जिनकी याद आते ही हमारी अन्तरात्मा काँप जाती है। उसी प्रकार यदि हम अपने आपका पृथक विचार न करें, बल्कि विवाहित जीवन के—संयुक्त जीवन के—उत्तरदायित्व का ही विचार करें, तो कई बार इसमें भी हम ऐसे-ऐसे काम कर जाते हैं जो हमारी व्यक्तिगत आत्मा के सर्वथा प्रतिकूल ही नहीं, घोर रूप से निन्दनीय होते हैं। बात यह है कि व्यक्तिगत जीवन की भाँति ही मनुष्य को अपने संयुक्त विवाहित जीवन में भी सावधानी से रहना चाहिए। कभी पाप की उपेक्षा न करनी चाहिए। बस, एकसा अपनी कमज़ोरियों से झगड़ते रहना चाहिए।

तुम्हारा यह कहना ठीक है मनुष्य परमात्मा की प्रतिमा है, इसलिए उसे अपने इस पवित्र शरीर को किसी पापाचरण द्वारा कलङ्कित न करना चाहिए। पर यह उस संयुक्त जीवन पर नहीं घटाया जा सकता, जिससे या तो बच्चे पैदा हो गये हैं या इसकी सम्भावना है। सन्तानोत्पत्ति और उनका पालन-पोषण इस सम्बन्ध के अनौचित्य और अपराध व दोषों को बहुत-कुछ नष्ट कर देता है। इसके अतिरिक्त गर्भावस्था और शिशु-संवर्धन की तपस्या उस पाप को साफ़-साफ़ धो डालती है।

यह प्रश्न करना हमारा काम नहीं है कि बच्चों का पैदा होना अच्छी बात है या बुरी? जिसने पवित्रता के भङ्ग के पाप को धोने का यह उपाय बताया, वह अपने काम को भली भाँति जानता था।

क्षमा करना, यदि मेरा कथन तुम्हें अप्रिय लगे। तुम जो कहती हो कि सन्तानोत्पत्ति से आदमी अधिकाधिक कमजोर हो जाता है, ठीक है। पर तुम्हारा यह ख़याल अत्यन्त अनुदार और स्वार्थमय है। तुम संसार में खुशमिज़ाज और केवल आनन्दी रहने के लिए ही नहीं आयी हो, बल्कि अपने काम को पूर्ण करने के लिए भेजी गयी हो। अपने आन्तरिक जीवन-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण कामों के अतिरिक्त तुम्हारा सबसे महत्त्व-पूर्ण काम यह है कि तुम अपने पति की पवित्रता की ओर बढ़ने में सहायता करो। यदि इस विषय में तुम उससे आगे

बढ़ी हुई हो तो तुम्हारा यही कर्त्तव्य है। यदि तुमनें खुद ही अपने सुपुर्द किये हुए कार्य को नहीं किया है, तो तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम संसार को ऐसे अन्य प्राणी दो, जो उस कर्त्तव्य को पूरा कर सकें।

दूसरे, विवाहित व्यक्तियों के बीच कोई सम्बन्ध हैं तो यह आवश्यक है कि वे दोनों उनमें भाग लें। यदि उनमें से एक अधिक विकारमय है, तो दूसरे को स्वभावतः यह मालूम होगा कि वह सम्पूर्ण रूप से पवित्र है। पर यह सोचना गलत है।

अपने विषय में भी तुम्हारा यह सोचना मेरे खयाल से गलत मालूम होता है। केवल अपना पाप तुम्हें दिखायी नहीं देता, जो दूसरे के प्रकट पाप के पीछे छिप जाता है। यदि इस विषय में तुम पूर्ण पवित्र होतीं तो, तुम अपने पति की विकार-तृप्ति के विषय मे अधिक उदासीन दिखायी देतीं। तुम उसके साथ ईर्ष्या नहीं करतीं, बल्कि उसकी कमजोरी पर तुम्हें तरस आता। पर बात यह नहीं है।

यदि तुम मुझसे पूछना चाहो कि मुझे क्या करना चाहिए? तो मैं तुम्हें यही सलाह दूँगा कि ऐसा मौका ढूँढ निकालो, जब तुम्हारे पति बहुत प्रसन्न हों, तुमपर खूब प्यार दिखा रहे हों और उन्हें फिर बड़ी मधुरता और अत्यन्त नम्रता के साथ विनयपूर्वक समझाओ कि उनकी विकार-तृप्ति की चेष्टायें तुम्हारे लिए कितनी

हो। यदि वह इससे सहमत न हों (जैसा कि तुम लिखती हो) कि पवित्रता से रहना अच्छा है तो उनकी इच्छा के वश हो जाओ। यदि तुम्हें परमात्मा बच्चे दें तो उनका स्वागत करो। पर गर्भावस्था और शिशु-सवर्धन के समय में तो जरूर अपने पति से कहो कि वह तुमसे दूर रहें। इसके बाद यदि वह फिर विषय-तृप्ति चाहें ही, तो फिर उनकी बात मान लो, किन्तु आगे क्या होगा इसकी चिन्ता करना छोड़ दो। परमात्मा तुम्हारा कल्याण ही करेगा।

ऐसा करने से तुम्हारे, तुम्हारे पति और उन बच्चों के लिए सिवा कल्याण के कुछ हो ही नहीं सकता, क्योंकि ऐसा करने से तुम अपने सुख और शांति की साधना ही नहीं करोगी, बल्कि परमात्मा की इच्छा-पूर्ति का भी प्रयत्न करोगी।

यदि इसमें तुम्हें कोई ग़लत सलाह दिखायी दे, तो मुझे क्षमा करना। परमात्मा को साक्षी रखकर मैंने वही लिखने का प्रयत्न किया है जैसा कि मै अपने जीवन में रहा हूँ और जैसा कि मैंने इस विषय में अबतक सोचा है।

× × ×

पति और पत्नी के बीच यदि कुछ अप्रियता उत्पन्न हो जाय तो वह नम्रता से ही दूर हो सकती है। सींते वक्त धागा यदि उलझ जाता है, तो उलझन की प्रत्येक गुत्थी के अन्दर से शांतिपूर्वक रील को निकालते जाने ही से वह सुलझ सकता है।

× × ×

मालूम होता है वह अपने विवाहित जीवन से असंतुष्ट है। एक वाञ्छनीय और धर्मसम्मत कर्म पर उसे पश्चात्ताप है। मैं चाहता हूँ कि ऐसा न हो तो अच्छा। निश्चयपूर्वक समझो कि बाहरी बातें पूर्णतया कभी अच्छी नहीं होती। यदि एक अविवेकपूर्ण मनुष्य का एक देवी के साथ या एक देवतास्वरूप पुरुष का दुष्ट स्त्री से विवाह हो, तो वे दोनों एक दूसरे से असंतुष्ट होंगे। और अपने विवाह में असंतुष्ट रहनेवाले कई नहीं प्रायः सभी लोग यही मानते हैं कि उनकी सी बुरी अवस्था किसीकी न होगी। इसलिए सबकी अवस्था एकसी होती है।

यदि तू स्त्री को—भले ही वह तेरी पत्नी हो—एक भोग और आमोद-प्रमोद की सामग्री ही समझता है तो तू व्यभिचार करता है। शारीरिक परिश्रम के नियम की पूर्ति के अनुसार वैवाहिक सम्बन्ध के मानी हैं एक भागीदार या उत्तराधिकारी का प्राप्त करना। वह स्वार्थमय आनन्द से युक्त रहता है। पर विषयानन्द के ख़याल से तो वह पतन है।

बाग़वान की स्त्री को फिर एक बच्चा हुआ है। फिर वह बूढ़ी दाई आयी और परमात्मा जाने कहाँ बच्चे को ले गयी?

प्रत्येक मनुष्य को भयंकर असतोष हो रहा है। सन्तति-विरोध के उपायों के अवलम्बन की इतनी परवाह मुझे नहीं है। पर यह तो एक ऐसी बुराई है कि उसके धिक्कारने योग्य मुझे कोई कठोर शब्द ही ढूँढे नहीं मिलते।

आज पता लगा है कि दाई उस बच्चे को लौटा लायी है।

रास्ते में उसे अन्य स्त्रियाँ मिलीं, जिनके पास भी ऐसे ही बच्चे थे। इनमें से एक बच्चे के मुँह में कोई खाने की चीज़ रक्खी हुई थी। मुँह में वह बहुत गहरी उतरी हुई थी। बच्चे के कण्ठ में वह अटक गयी और वह दम घुटने से मर गया। मास्को के अनाथालय में एक ही दिन में ऐसे पचीस बच्चे गये थे।

एन्० आज सुबह बागबान की औरत को फटकार सुनाने के लिए गया था। उसने अपने पति का बड़े जोरों से समर्थन करते हुए कहा कि अपने जीवन की वर्तमान अनिश्चितता और गरीबी के कारण वह अपने बच्चों का पालन-पोषण करने में असमर्थ थी। एक शब्द में कहना चाहें तो, बच्चों को रखना उसके लिए बड़ा 'असुविधाजनक' था।

अभी, अभी तक तीन अनाथ बच्चे मेरे पास रहते थे। बच्चों की हर जगह पैदायश बेहद बढ़ गयी है। बेचारे शराबखोर, बीमार, और जंगली बनने के लिए पैदा होते और बढ़ते हैं।

लोग भी बड़े बेढब हैं। वे भी एक ही साथ बच्चों और मनुष्यों की जान बचाने और नष्ट करने के उपायों को खोजते रहते हैं। पर इतने बच्चे वे पैदा ही क्यों करते है? क्या यह अच्छी बात है?

मनुष्य को चाहिए कि वे बच्चों को या मनुष्य को मारें नहीं, न उनका पालन करना बन्द करें, बल्कि वे अपनी तमाम शक्ति जंगली मनुष्यों को सच्चे मनुष्य बनाने में लगा दें। बस, केवल यही एक बात अच्छी है। और यह काम शब्दों से नहीं, अपने प्रत्यक्ष उदाहरण द्वारा ही हो सकता है।

यदि उनका पतन हो जाय तो वे समझ लें कि इस पाप से मुक्त होने के केवल दो ही मार्ग हैं—(१) अपने को विकार-रहित बनावें और (२) बच्चों को सुसंस्कृत कर उन्हें ईश्वर के सच्चे सेवक बनावें।

× × ×

प्यारे एम० और एन०, मुझे तुम्हारे विवाह पर बड़ा आनन्द हो रहा है। परमात्मा तुम्हें सुख-शान्ति और निर्मल प्यार दे। बस, इससे अधिक की तुम्हें आवश्यकता ही नहीं। पर प्यारे मित्रो, क्षमा करना। मैं तुम्हें सावधान किये बिना नहीं रह सकता। दोनों खूब सावधान रहना। अपने पारस्परिक सम्बन्ध में खूब सावधान रहना; कहीं तुम्हारे अन्दर चिड़चिड़ाहट और एक दूसरे से अलग होने की वृत्ति न घुसने पावे। एक शरीर और एक आत्मा होना कोई आसान बात नहीं है। मनुष्य को खूब प्रयत्न करना चाहिए। फल भी महान् होगा। उपाय यदि पूछो, तो मैं तो केवल एक ही जानता हूँ। अपने वैवाहिक प्रेम को पारस्परिक और स्वाभाविक प्रेम पर कभी प्रभुत्व न जताने देना – दोनों एक दूसरे के मनुष्योचित अधिकारों का खूब ख़याल रखना। पति-पत्नी का सम्बन्ध जरूर रहे; पर जैसा मनुष्य एक अपरिचित आदमी या एक पड़ौसी के साथ, जो सज्जनोचित बर्ताव और आदर-सम्मान करता है वही तुम्हारे बीच भी हो। यही सत्सम्बन्ध की बुनियाद है, धुरी है।

× × ×

एक दूसरे के प्रति आसक्ति को न बढ़ाओ, बल्कि अपनी तमाम शक्ति से अपने पारस्परिक सम्बन्ध में सावधानी तथा विचारशीलता बढ़ाओ, जिससे तुम्हारे बीच कटुता न उत्पन्न हो। बात-बात पर झगड़ना बड़ी भयंकर आदत है। पति-पत्नी को छोड़ और किसी सम्बन्ध में इतनी सर्वाङ्गीण घनिष्ठता नहीं होती और इसलिए सबसे ज्यादा एहतियात की भी आवश्यकता है। इस घनिष्ठता ही के कारण हम अक्सर उसपर विचार करना भूल जाते हैं; जिस प्रकार शरीर के विषय में हम सावधानी रखना भूल जाते हैं, और यही बुराई की जड़ है।

× × × ×

एक विवाहित दम्पती के लिए उपन्यासों के वर्णनों-जैसे, अथवा अपनी हार्दिक इच्छा के अनुसार सुखी होने के लिए वैसा ही मेल होना आवश्यक है। पर यह तभी हो सकता है जब विश्व-जीवन का ध्येय और बच्चों के सम्बन्ध में उनके विचारों में एकता हो। पति-पत्नी का विचार, ज्ञान, रुचि और संस्कृति एक-सी होना एक असम्भव-सी बात है। अतः सुख तो उन्हें तभी प्राप्त हो सकता है, जब दो में से एक अपने विचारों को दूसरे के विचारों के सामने गौण समझ ले।

पर यही तो मुख्य कठिनाई है। उच्च विचारवाला पुरुष या स्त्री निम्न विचारवाले के सामने अपने विचारों को गौण नहीं समझ सकता, चाहे वह इस बात को दिल से भी चाहता हो। मेल के लिए आदमी अपना खाना छोड़ सकता है, नींद कम कर सकता

है, कठिन परिश्रम कर सकता है, पर वह नहीं कर सकता, जो उसके विचार में गलत, अनुचित और विचारहीन ही नहीं, बल्कि विचार, सदाचार और सिद्धान्त के विपरीत हो। निःसन्देह दोनों के दिल में यह भाव होता है कि उनका जीवन पारस्परिक मेल के आधार पर ही सुखी रह सकता है; दोनों इस बात को भी जानते हैं कि उनके बच्चों की शिक्षा भी इसी विचार की एकता के ऊपर निर्भर है; परन्तु फिर भी एक स्त्री अपने पति की शराबखोरी या जुआखोरी से कभी सहमत नहीं हो सकती और न एक पति इस बात को मंजूर कर सकता है कि उसकी पत्नी नाच-गान में बार बार शरीक होती रहे या उसके बच्चों को नाचना-कूदना या ऐसी ही वाहियात बातें सिखलायी जायें।

संयुक्त-जीवन सुखमय तथा कल्याण-रूप बनाने के लिए यह आवश्यक है कि जो अपने को दूसरे की अपेक्षा कम सुसंस्कृत देखने और दूसरे की श्रेष्ठता को अनुभव करनेवाला हो, फिर वह पुरुष हो या स्त्री, वह खाने-पीने-पहनने आदि गृह-व्यवस्था-सम्बन्धी बातों में ही नहीं, बल्कि जीवन के विशेष महत्त्वपूर्ण प्रश्नों, आदर्शों आदि के विषय में भी अपने से उच्चतर विचार रखनेवाले व्यक्ति के—फिर वह पति हो या पत्नी—आदर्शों को ही प्रधानता दे।

क्योंकि पति, पत्नी, बच्चे और समस्त परिवार के सच्चे कल्याण के लिये मधुर मेल का होना परम आवश्यक है, उनकी अनबन और झगड़े, उनके तथा बच्चों के लिए एक विपत्ति है और दूसरों के कार्य में विघ्न। यही सबसे भयंकर नरक है।

और इसे टालने के लिए केवल एक बात की जरूरत है—दो में से कोई इस बात को मान ले।

मेरा खयाल है कि जब दो में से कोई इस बात को महसूस करने लगता है कि दूसरा उससे श्रेष्ठ है, तब उसे उसके विचार और निर्णयों को प्रधानता देना अपने आप आसान हो जाता है-यहाँ तक कि जब कभी हम इसके विपरीत आचरण देखते हैं, तो हमें बड़ा आश्चर्य होता है।

× × × ×

विवाहित दम्पती के सृष्टि और जीवन सम्बन्धी व्यावहारिक विचारों में एकता न हो तो कम अनुभवी विचारशील को चाहिए कि अधिक अनुभवी और विचारशील के विचारों को प्रधानता दे।

मनुष्य को चाहिए कि वह मानवता और परिवार की सेवा को एकरूप कर ले। दोनों की सेवा में अपना समय बाँट करके बेमन से नहीं बल्कि अपने परिवार की सेवा के रूप ही मे मनुष्य जाति की सेवा समझ अपने परिवार के व्यक्तियों को और बच्चों को सुशिक्षित बनाकर मनुष्य जाति की आदर्श सेवा करे। सच्चा विवाह, जिसका फल सन्तानोत्पत्ति होता है, परमात्मा की अप्रत्यक्ष सेवा ही है। यह तो अपने काम को अपने बच्चों के हाथों में सौंपना समझना चाहिए। यदि मैंने अपना कर्त्तव्य पूर्ण नहीं किया, तो मेरे प्रतिनिधि मेरे बच्चे हैं, ये। कर डालेंगे। इसलिए विवाह और प्रेम हो जाने पर हमे एक प्रकार की शांति मिलती है।

पर सवाल यह है कि उन्हें इस कर्तव्य के पालन करने के योग्य होना चाहिए। उनका शिक्षा-संस्कार इस तरह होना चाहिए, जिससे वे परमात्मा के काम के बाधक नहीं, साधक हों। यदि मैं अपने आदर्श के नजदीक नहीं पहुँच सका, तो मुझे यह कोशिश करनी चाहिए, जिससे मेरे बच्चे उसके नज़दीक पहुँच सकें। बस, यही इच्छा बच्चों के शिक्षा-संस्कार की समस्त योजना और स्वरूप को निश्चित कर देती है। वह उसको धार्मिक महत्त्व प्रदान कर देती है। यही भावना है, जो आत्मोत्सर्ग की सर्वश्रेष्ठ आकांक्षाओं का उदय एक युवक के हृदय में कर देती है, और उसे अपने परिवार-मार्ग से मानव जाति की सेवा के योग्य बना देती है।

× × × ×

मैं इस नवागत देवदूत का स्वागत करता हूँ। यह कौन है? कहाँ से आया है? क्यों आया है? कहाँ जायगा? विज्ञान जिनके लिए इन प्रश्नों का उत्तर सुझा देता है, उनके लिए तो अच्छा ही है। पर जिनके लिए विज्ञान मार्ग-दर्शक नहीं है, उनको विश्वास करना चाहिए कि एक बालक का जन्म बड़ी अर्थपूर्ण और रहस्यमय बात है। इस रहस्य को हम तभी और उतने ही अंशों में समझेंगे, जितने अंशों में हम उनके प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे।

× × × ×

विवाहित पुरुषों को या तो अपनी स्त्री और बच्चों को छोड़ देना चाहिए, जो कि कोई नहीं मान सकता, या एक स्थान पर बस

जाना चाहिए उनका यहाँ-वहाँ भटकना उनकी स्त्रियों के लिए अत्यन्त दुखदायी साबित होगा, जो अक्सर, मुझे वे स्पष्टता के लिए क्षमा करें, परमात्मा के लिए नहीं बल्कि अपने पति के लिए पवित्र जीवन व्यतीत करती है, और यह उनके लिए बड़ा कष्टप्रद होता होगा। इसलिए हमे उनपर दया करनी चाहिए। पति और पत्नी कुछ रोज एक जगह शांतिपूर्वक रहकर अपनी गृहस्थी जमा ही पाते है कि अचानक एकाएक उन्हे अपना घर-बार उठाकर दूसरी जगह जाना पड़ता है। फिर वहाँ नया घर-बार जमाओ। यह सब उनकी शक्ति के बाहर है। ऐसी बुनियाद पर बनायी गयी इमारत कितने दिन खड़ी रह सकती है? मै जानता हूँ कि तुम यही कहोगे कि इस हालत में मनुष्य को अपने बाल-बच्चों को अपने साथ ले-ले कर न दौड़ना चाहिए, उन्हें एक जगह रखकर आप कहीं भी दौड़ता रहे। मेरा ख्याल है कि यह तो आपस में सलाह करके ही करना चाहिए। इसपर भी ईसा का एक वचन है, जिसका ख्याल करना जरूरी है। वह कहता है—स्त्री और पुरुष अलग-अलग नहीं एक ही हैं, जिन्हें परमात्मा ने सम्मिलित किया है, उन्हें मनुष्य जुदा जुदा न करे। तुम्हारे जैसे हट्टे-कट्टे और सुखी प्राणियों को पहले तो शादी ही न करनी चाहिए, किन्तु कर लेने पर और बाल बच्चे पैदा हो जाने पर उनकी लापरवाही न करनी चाहिए। मेरा ख्याल है कि पुरुषों को अपनी पत्नी को छोड़ने का सवाल या आग्रह करना पाप है। यह ठीक है कि पहले-पहल यही मालूम होता है कि स्त्री और बच्चों से अलग रहकर आदमी परमात्मा की

अधिक सेवा कर सकता है। पर कई बार यह केवल भ्रम ही साबित हुआ है। हाँ, यदि तुम पूर्णतया निष्पाप होते, तो शायद यह हो सकता था। दूसरे किसी को ऐसा उपदेश भी न करना चाहिए, जिससे वह अपनी स्त्री और बाल-बच्चों को छोड़ दे। क्योंकि इसके अनुसार जिन लोगों ने विवाह करने का पाप किया है, वे अपनी नज़र में तथा दूसरों की नज़र में भी अपने-आपको बड़ी निराशामय परिस्थिति में पावेंगे। और यह तो बुरा है। मेरा तो ख़याल है कि कमज़ोर और पातकी मनुष्य भी परमात्मा की सेवा कर सकता है।

विवाह करने का पाप करके मनुष्य को चाहिए कि वह उसके फल को पवित्र धार्मिक रूप से भोगे भी। उससे मुँह मोड़कर दूसरा पाप न करे। बल्कि इसी अवस्था में तन-मन से परमात्मा की सेवा करे।

× × ×

हाँ, ईसा ने परमात्मा की सेवा का जो आदर्श पेश किया है वह जीवन तथा मनुष्य जाति को टिकाये रखने की चिन्ताओं से मुक्त है। अपने को चिन्ताओं से मुक्त रखने के प्रयत्न ने अबतक तो मनुष्य-जाति का नाश किया नहीं। आगे क्या होगा, सो मैं नहीं जानता।

× × ×

अपने जमाने की विचित्रताओं के विषय में कुछ कहने की इच्छा नहीं होती। पर तमाम ईसाई देशों के गरीबों और अमीरों

में पति और पत्नी, स्त्री और पुरुष के बीच जो सम्बन्ध हैं, सच-मुच अजीब हैं। जैसा कि मुझे दिखायी देता है, स्त्रियों के द्वारा यह सम्बन्ध बुरी तरह बिगाड़ दिया गया है। वे पुरुषों के साथ केवल उद्दण्डता ही नहीं करतीं बल्कि उनका द्वेष तक करने लग जाती हैं। वे अपनी ठसक जताना चाहती हैं। वे दिखाना चाहती हैं कि वे पुरुष से किसी बात में कम नहीं हैं। जो बातें पुरुष कर सकते हैं वे सब स्त्रियाँ भी कर सकती हैं। सच्ची नैतिक और धार्मिक भावना का एक तरह से उनमें अभाव-सा मालूम होता है। यदि कहीं होता भी है तो उनके माता बनते ही वह अदृश्य हो जाता है।*

× × ×

मेरा ख़याल है कि स्त्रियाँ पुरुषों से किसी बात में भी कम नहीं हैं। पर ज्यों ही वे शादी कर लेती हैं और मातायें बन जाती हैं, त्यों ही श्रम का स्वभाविक रूप से विभाजन हो जाता है। मातृत्व उनकी इतनी शक्ति को खींच लेता है कि फिर परिवार के लिए नैतिक मार्ग-दर्शिका बनने के लिए उनके नजदीक कोई उत्साह ही नहीं रह जाता। स्वभावतः यह काम पति पर आ पड़ता है। बस, संसार के आरम्भ से यही चला आया है।

पर आजकल कुछ गड़बड़ी हो गयी है। पुरुष ने अपने इस अधिकार का बीच-बीच में दुरुपयोग किया। अपनी राय और

*जहाँ कहीं टाल्स्टाय ने स्त्रियों के विषय में ऐसी बातें कही हैं वहाँ उनका मतलब उन माताओं से है, जो अपने स्वाभाविक सौजन्य से बच्चों की मोहब्बत के कारण हाथ धो बैठी हैं। —अनुवादक

मत उसने स्त्री पर जबर्दस्ती लादे और स्त्री ने ईसाई-धर्म के द्वारा स्वाधीनता मिलने के कारण पुरुष की आज्ञा मानना छोड़ दिया है। पर उसने अभी स्वेच्छापूर्वक पुरुष का आज्ञापालन करना तो मैं नहीं कहता, पर उसके मार्ग-दर्शन को अच्छा समझ कर उसको मंजूर करना भी शुरू नहीं किया। इस प्रकार जीवन अव्यवस्थित और पेचीदा हो गया है। यह तो समाज के प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक परिस्थिति में पाया जाता है।

× × ×

स्त्री-पुरुषों के बीच जो अधिकांश क्लेश पाया जाता है, उसका प्रधान कारण उनका एक-दूसरे को भली-भाँति न समझ पाना ही है।

पुरुष इस बात को कदाचित् ही समझ पाते हों कि स्त्रियों के लिए बच्चे कितने प्यारे होते हैं? जीवन में उनके शिशुओं का क्या महत्त्व है? साथ ही स्त्रियाँ तो पुरुष के सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक कर्त्तव्यों को और भी कम समझ पाती हैं।

× × × ×

यद्यपि पुरुष कभी अपने पेट में बच्चों को न रख सकता है और न जन सकता है, तथापि वह इस बात को जरूर समझ सकता है कि ये दोनों काम बड़े कठिन और अत्यन्त कष्टप्रद हैं। साथ ही वह इसके महत्त्व को भी भली-भाँति जानता है। पर इस बात को विरली स्त्रियाँ ही जानती हैं कि जन्म देना और नवीन आध्यात्मिक रीति से जीवन-धारणा को जन्म देना एक

गुरुतर और महान् कार्य है। थोड़ी देर के लिए कभी-कभी वे समझ भी लेती हैं तो उसी क्षण भूल जाती हैं, और ज्यों ही उनकी अपनी बातें आती हैं—फिर वे पहनने-ओढ़ने जैसी कितनी ही तुच्छ पारिवारिक बातें क्यों न हों—वे पुरुषों के विश्वास की सत्यता और दृढ़ता को फौरन भुला देती हैं। वह उनको गहने-कपड़े के सामने असत्य और काल्पनिक प्रतीत होता है।

× × ×

मुझे यह कल्पना सुनकर बड़ा ही विस्मय हुआ कि स्त्री और पुरुष के बीच जो अक्सर लड़ाई छिड़ जाती है, उसका कारण प्रायः यह भी होता है कि परिवार का काम किस तरह चलाया जाय? एक पत्नी कभी इस बात को स्वीकार नहीं करती कि उसका पति होशियार और व्यवहार-कुशल है। क्योंकि यदि इसे वह कबूल करले, तो पति की सब बातें भी उसे माननी पड़ें और पुरुष भी स्त्री के बारे में ऐसा ही सोचता है। यदि मैं 'क्रूजर सोनाता' इस समय लिख रहा होता; तो मैं इस बात को जरूर आगे लाता।

अन्ततोगत्वा वही शासन करने लगते हैं, जिनपर जबर्दस्ती की गयी है—अर्थात्, जिन्होंने अप्रतिकार के क़ानून का पालन किया है। स्त्रियाँ अधिकारों के लिए प्रयत्न कर रही हैं, पर वे महज इसीलिए शासन करती हैं कि उनपर बल का प्रयोग किया गया है। संस्थायें पुरुषों के हाथों में हैं। पर लोकमत तो स्त्रियों के अधीन है। और लोकमत तमाम कानून और फौजों की

जोर जाति होती है, जो निम्न होती है, उसीपर डाल दिया जाता है। यह रिवाज गहरी जड़ पकड़ गया है। मनुष्य स्त्रियों की समानता को कबूल करता है, वह कहता है कि स्त्रियों को कालेज में प्रोफेसर और डाक्टर हो जाना चाहिए। पुरुष स्त्रियों का जी-जान से आदर भी करता है। पर यदि दोनों के बच्चे ने किसी कपड़े पर टट्टी कर दी हो तो, उसे धोने का काम उससे न होगा। यदि बच्चे के कपड़े कहीं फट गये हों और स्त्री बीमार हो, या थक गयी हो, या घड़ी भर लिखना या पढ़ना चाहती हो, तो यह भी उससे न होगा। उसे यह कर डालने का विचार तक न आवेगा।

लोकमत भी इस विषय में इतना पतित हो गया है कि यदि कोई दयावान् कर्तव्यशील पुरुष ऐसा करने लग जाय, तो लोग उसका मखौल उड़ावेंगे। इस काम को करने के लिए बहुत भारी पौरुष की आवश्यकता है।

इसलिए इस विषय में मै तुम्हारे साथ पूरी तरह सहमत हूँ। तुमने इस बात को प्रकट करने का मुझे मौक़ा दिया, इसलिए मै तुम्हारा सचमुच बहुत ऐहसानमन्द हूँ।

× × × ×

सच्चा स्त्री-जाति का उद्धार यह है, कि किसी भी काम के विषय में यह न समझा जाय कि यह केवल स्त्रियों का ही काम है और हमें उसे करते हुए लज्जा मालूम होती है। बल्कि उसे शारीरिक तौर से कमज़ोर समझ कर हमें तो प्रत्येक काम में

गुरुतर और महान् कार्य है। थोड़ी देर के लिए कभी-कभी वे समझ भी लेती हैं तो उसी क्षण भूल जाती हैं, और ज्यों ही उनकी अपनी बातें आती हैं—फिर वे पहनने-ओढ़ने जैसी कितनी ही तुच्छ पारिवारिक बाते क्यों न हों—वे पुरुषों के विश्वास की सत्यता और दृढ़ता को फौरन भुला देती हैं। वह उनको गहने-कपड़े के सामने असत्य और काल्पनिक प्रतीत होता है।

× × ×

मुझे यह कल्पना सुनकर बडा ही विस्मय हुआ कि स्त्री और पुरुष के बीच जो अक्सर लड़ाई छिड़ जाती है, उसका कारण प्राय: यह भी होता है कि परिवार का काम किस तरह चलाया जाय ? एक पत्नी कभी इस बात को स्वीकार नहीं करती कि उसका पति होशियार और व्यवहार-कुशल है। क्योंकि यदि इसे वह क़बूल करले, तो पति की सब बातें भी उसे माननी पड़े और पुरुष भी स्त्री के बारे मे ऐसा ही सोचता है। यदि मै 'क्रुज़र सोनाता' इस समय लिख रहा होता; तो मै इस बात को जरूर आगे लाता।

अन्ततोगत्वा वही शासन करने लगते हैं, जिनपर जबर्दस्ती की गयी है—अर्थात्, जिन्होंने अप्रतिकार के कानून का पालन किया है। स्त्रियाँ अधिकारों के लिए प्रयत्न कर रही हैं, पर वे महज इसीलिए शासन करती हैं कि उनपर बल का प्रयोग किया गया है। संस्थायें पुरुषों के हाथों में हैं। पर लोकमत तो स्त्रियों के अधीन है। और लोकमत तमाम कानून और फौजों की

जोर जाति होती है, जो निम्न होती है, उसीपर डाल दिया जाता है। यह रिवाज गहरी जड़ पकड़ गया है। मनुष्य स्त्रियों की समानता को कबूल करता है, वह कहता है कि स्त्रियों को कालेज में प्रोफेसर और डाक्टर हो जाना चाहिए। पुरुष स्त्रियों का जी-जान से आदर भी करता है। पर यदि दोनों के बच्चे ने किसी कपड़े पर टट्टी कर दी हो तो, उसे धोने का काम उससे न होगा। यदि बच्चे के कपड़े कहीं फट गये हों और स्त्री बीमार हो, या थक गयी हो, या घड़ी भर लिखना या पढ़ना चाहती हो, तो यह भी उससे न होगा। उसे यह कर डालने का विचार तक न आवेगा।

लोकमत भी इस विषय में इतना पतित हो गया है कि यदि कोई दयावान् कर्तव्यशील पुरुष ऐसा करने लग जाय, तो लोग उसका मखौल उड़ावेंगे। इस काम को करने के लिए बहुत भारी पौरुष की आवश्यकता है।

इसलिए इस विषय में मैं तुम्हारे साथ पूरी तरह सहमत हूँ। तुमने इस बात को प्रकट करने का मुझे मौक़ा दिया, इसलिए मैं तुम्हारा सचमुच बहुत ऐहसानमन्द हूँ।

× × × ×

सच्चा स्त्री-जाति का उद्धार यह है, कि किसी भी काम के विषय में यह न समझा जाय कि यह केवल स्त्रियों का ही काम है और हमें उसे करते हुए लज्जा मालूम होती है। बल्कि उसे शारीरिक तौर से कमज़ोर समझ कर हमें तो प्रत्येक काम में

उसकी सहायता करनी चाहिए । जितना हो सके, हमें उसके काम को हलका करने की कोशिश करनी चाहिए ।

उसी प्रकार उनकी शिक्षा के विषय में भी हमें विशेष सावधानी रखनी चाहिए । यह समझ कर कि इनकी शादी होने पर बच्चों के जनन, पालन-पोषण आदि में उनको लिखने पढ़ने के लिए काफी समय न मिलने पावेगा, हमें उनके स्कूलों पर लड़कों के स्कूलों की अपेक्षा कम नहीं, बल्कि अधिक ध्यान देना चाहिए । इसलिए कि वे जितना भी कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं, विवाह और मातृत्व के पहले-पहल कर लें ।

× × × ×

यह बिलकुल सत्य है कि स्त्रियाँ और उनके काम के विषय में कितनी ही हानिकर और पुरानी धारणायें हमारे समाज में प्रचलित हैं । उनके खिलाफ भी हमें उतनी ही आवाज उठानी चाहिए। पर मेरा खयाल है कि स्त्रियों के लिए पुस्तकालय और अन्य संस्थायें खोलनेवाला समाज उनके लिए न झगड़ सकेगा ।

मैं इसलिए नहीं झगड़ता कि स्त्रियों को कम वेतन दिया जाता है । काम की कीमत तो उसको देखकर ही होती है । मुझे सबसे ज्यादा रोष तो इस बात का होता है कि एक तो स्त्री पहले ही बच्चों को जनने, पालन करने आदि के कारण बेजार रहती है, तिसपर उसके सिर पर और खाना पकाने का भार भी डाल दिया जाता है । बेचारी चूल्हे के सामने तपे, बर्तन मले, कपड़े धोये,

विद्यापीठ आदि के विषय में ) नहीं हैं। मैं तो उस महान् गौरवास्पद वस्तु के विषय में सोच रहा था, जिसे स्त्री-धर्म कहते हैं। इसके विषय में कई उल्टी-उल्टी बातें स्वयं शिक्षित स्त्रियों में फैलाई जा रही है। मसलन्, स्त्रियों को यह समझाया जाता है कि उन्हें दूसरों के बच्चों से अपने बच्चों पर अधिक प्यार न करना चाहिए। उनके विकास और पुरुषों के साथ उनकी समानता होने के विषय में भी कुछ भ्रम-पूर्ण और समझ में न आने योग्य बातें फैलायी जाती है।"

पर यह बात कि उसे दूसरों की अपेक्षा अपने बच्चों पर अधिक प्यार न करना चाहिए, सभी जगह कही जाती है, और एक स्वयं-सिद्ध बात समझी जाती है। व्यावहारिक नियम के अनुसार भी यह तमाम उपदेशों का सार है। पर फिर भी यह सिद्धान्त बिलकुल गलत है।

"*प्रत्येक स्त्री और पुरुष का धर्म है मानवजाति की सेवा। इस सार्वभौम तत्त्व को तो, मेरा खयाल है, सभी नीतिमान् पुरुष मानेंगे। इस कर्तव्य की पूर्ति में स्त्री और पुरुषों के बीच उसकी

* यहाँ पर यह कह देना ज़रूरी है कि यह उदाहरण तथा इस प्रकार के दरसाने वाले अन्य उदाहरण भी उस "अन्तिम कथन" के पहले लिख गये हैं, जिसमे उन्होंने अपने स्त्री-पुरुष-विषयक विचारों को साफ-साफ़ प्रकट कर दिया है। प्रस्तावना में यह बात बताने का प्रयत्न किया गया है कि ग्रन्थकार के पहले और बाद के विचारों में इतनी विभिन्नता क्यों है?—अनुवादक

उसकी सहायता करनी चाहिए । जितना हो सके, हमें उसके काम को हलका करने की कोशिश करनी चाहिए ।

उसी प्रकार उनकी शिक्षा के विषय में भी हमें विशेष सावधानी रखनी चाहिए । यह समझ कर कि इनकी शादी होने पर बच्चों के जनन, पालन-पोषण आदि में उनको लिखने पढ़ने के लिए काफी समय न मिलने पावेगा, हमें उनके स्कूलों पर लडकों के स्कूलों की अपेक्षा कम नही, बल्कि अधिक ध्यान देना चाहिए । इसलिए कि वे जितना भी कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं, विवाह और मातृत्व के पहले-पहल कर लें ।

× × × ×

यह बिलकुल सत्य है कि स्त्रियाँ और उनके काम के विषय में कितनी ही हानिकर और पुरानी धारणायें हमारे समाज में प्रचलित हैं । उनके खिलाफ भी हमें उतनी ही आवाज उठानी चाहिए। पर मेरा खयाल है कि स्त्रियों के लिए पुस्तकालय और अन्य संस्थायें खोलनेवाला समाज उनके लिए न झगड़ सकेगा ।

मै इसलिए नहीं झगड़ता कि स्त्रियों को कम वेतन दिया जाता है । काम की कीमत तो उसको देखकर ही होती है । मुझे सबसे ज्यादा रोष तो इस बात का होता है कि एक तो स्त्री पहले ही बच्चों को जनने, पालन करने आदि के कारण बेजार रहती है, तिसपर उसके सिर पर और खाना पकाने का भार भी डाल दिया जाता है । बेचारी चूल्हे के सामने तपे, बर्तन मले, कपड़े धोये,

विद्यापीठ आदि के विषय में ) नहीं हैं। मैं तो उस महान् गौरवास्पद वस्तु के विषय में सोच रहा था, जिसे स्त्री-धर्म कहते हैं। इसके विषय में कई उल्टी-उल्टी बातें स्वयं शिक्षित स्त्रियों में फैलाई जा रही है। मसलन्, स्त्रियों को यह समझाया जाता है कि उन्हें दूसरों के बच्चों से अपने बच्चों पर अधिक प्यार न करना चाहिए। उनके विकास और पुरुषों के साथ उनकी समानता होने के विषय में भी कुछ भ्रम-पूर्ण और समझ में न आने योग्य बातें फैलायी जाती है।

पर यह बात कि उसे दूसरों की अपेक्षा अपने बच्चों पर अधिक प्यार न करना चाहिए, सभी जगह कही जाती है और एक स्वयं-सिद्ध बात समझी जाती है। व्यावहारिक नियम के अनुसार भी यह तमाम उपदेशों का सार है। पर फिर भी यह सिद्धान्त बिलकुल गलत है।

* प्रत्येक स्त्री और पुरुष का धर्म है मानवजाति की सेवा। इस सार्वभौम तत्त्व को तो, मेरा खयाल है, सभी नीतिमान् पुरुष मानेंगे। इस कर्तव्य की पूर्ति में स्त्री और पुरुषों के बीच उसकी

---

* यहाँ पर यह कह देना ज़रूरी है कि यह उदाहरण तथा इस प्रकार के दरसाने वाले अन्य उदाहरण भी उस "अन्तिम कथन" के पहले लिख गये हैं, जिसमें उन्होंने अपने स्त्री-पुरुष-विषयक विचारों को साफ़-साफ़ प्रकट कर दिया है। प्रस्तावना में यह बात बताने का प्रयत्न किया गया है कि ग्रन्थकार के पहले और बाद के विचारों में इतनी विभिन्नता क्यों है?—अनुवादक

पूर्ति के साधनों की योजना के अनुसार महान् भेद है। पुरुष शारीरिक, मानसिक और नीतियुक्त कार्यों द्वारा यह सेवा करता है। उसके सेवा करने के मार्ग असंख्य हैं। बच्चे पैदा करने और उनको दूध पिलाने को छोड़कर ससार में जितने भी काम हैं वे पुरुष की सेवा के क्षेत्र हो सकते हैं। स्त्री उन सब कामों के अतिरिक्त भी अपनी शरीर-रचना के कारण एक खास काम के लिए नियुक्त की गयी है और पुरुष के कार्य-क्षेत्र से बाहर रख दी गयी है। मानव-सेवा दो प्रकार के कार्यों मे विभक्त हो गयी है। एक तो वर्तमान मानवों का कल्याण या सेवा करना और दूसरे मनुष्य जाति को कायम रखना। पहले प्रकार का कर्तव्य पुरुषों के सिर पर रखा गया है, क्योंकि दूसरे के लिए जिन सुविधाओं की आवश्यकता है उनसे वह वंचित रखा गया है। स्त्रियों को दूसरे काम के लिए इसलिए रखा गया है कि केवल वे ही उसे कर सकती हैं। इस स्वाभाविक भेद को भुला देना या भुलाने की कोशिश करना पापमय है, भूल है। दरअसल इसे कोई भुला नहीं सकता, और न भुलाना चाहिए। इसी भेद के कारण स्त्री-पुरुषों के कार्य-क्षेत्र में भी भेद हो गया है। यह भेद मनुष्य का बनाया कृत्रिम क्षेत्र नहीं, प्राकृतिक है। इसी विशेषता से स्त्री और पुरुष के गुण-दोषों की भी विभिन्नता उत्पन्न होती है, जो युगों से चली आयी है, आज भी है, और इसी तरह तब तक चली जायगी, जब तक मनुष्य विवेकशील प्राणी बना रहेगा।

जो पुरुष अपना समय पुरुषोचित विविध कामों को करते

इस तरह यद्यपि पुरुष और स्त्री के कार्य-क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं, तथापि दोनों के ईश्वर तथा मानव-जाति के प्रति सेवा के कार्यों में एक विलक्षण साम्य है। दोनों सम-समान हैं। यह समानता की भावना तब और भी बढ़ जाती है, जब हम देखते हैं कि दोनों कार्य एक ही से महत्त्वपूर्ण और अन्योन्याश्रित—एक दूसरे के सहायक—हैं। दोनों को सम्पन्न करने के लिए सत्य का ज्ञान भी उतना ही आवश्यक है, जिसके बिना उनके कार्य लाभदायक होने के बजाय हानिकर सिद्ध होने की सम्भावना है।

पुरुष को अनेक प्रकार के कार्य करने का आदेश तो है, पर उसके तमाम खेती करना या बन्दूक बनाना आदि शारीरिक, मानव जीवन को ऊँचा उठाना या धन गिनना आदि मानसिक तथा मनुष्यों में एकता स्थापित करना या पाप के लिए उत्तेजित करना आदि धार्मिक कार्य तभी सफल होंगे, जब वह अपने अनुभूत सत्य के आधार पर इनको करेगा।

यही बात स्त्रियों के व्यवसाय के सम्बन्ध में भी है। उसका बच्चों को जन्म देना, उनका लालन-पालन और भरण-पोषण करना मानव-जाति के लिए उसी समय उपयोगी सिद्ध होगा जब वह केवल अपने आनन्द के लिए बच्चे नहीं किन्तु मानव-समाज के भावी सेवक उत्पन्न करेंगी; जब इन बालकों (बच्चों) को शिक्षा उस उच्चतम सत्य के नाम पर दी गयी हो जिसका उसे ज्ञान है; अर्थात् जिस समय उसने अपने बच्चों को शिक्षा इस-

पूर्ति के साधनों की योजना के अनुसार महान् भेद है। पुरुष शारीरिक, मानसिक और नीतियुक्त कार्यों द्वारा यह सेवा करता है। उसके सेवा करने के मार्ग असख्य हैं। बच्चे पैदा करने और उनको दूध पिलाने को छोड़कर संसार में जितने भी काम हैं वे पुरुष की सेवा के क्षेत्र हो सकते है। स्त्री उन सब कामों के अतिरिक्त भी अपनी शरीर-रचना के कारण एक खास काम के लिए नियुक्त की गयी है और पुरुष के कार्य-क्षेत्र से बाहर रख दी गयी है। मानव-सेवा दो प्रकार के कार्यों मे विभक्त हो गयी है। एक तो वर्तमान मानवों का कल्याण या सेवा करना और दूसरे मनुष्य जाति को कायम रखना। पहले प्रकार का कर्तव्य पुरुषों के सिर पर रखा गया है, क्योंकि दूसरे के लिए जिन सुविधाओं की आवश्यकता है उनसे वह वंचित रखा गया है। स्त्रियों को दूसरे काम के लिए इसलिए रखा गया है कि केवल वे ही उसे कर सकती है। इस स्वाभाविक भेद को भुला देना या भुलाने की कोशिश करना पापमय है, भूल है। दरअसल इसे कोई भुला नहीं सकता, और न भुलाना चाहिए। इसी भेद के कारण स्त्री-पुरुषों के कार्य-क्षेत्र में भी भेद हो गया है। यह भेद मनुष्य का बनाया कृत्रिम क्षेत्र नहीं, प्राकृतिक है। इसी विशेषता से स्त्री और पुरुष के गुण-दोषों की भी विभिन्नता उत्पन्न होती है, जो युगों से चली आयी है, आज भी है, और इसी तरह तब तक चली जायगी, जब तक मनुष्य विवेकशील प्राणी बना रहेगा।

जो पुरुष अपना समय पुरुषोचित विविध कामों को करते

इस तरह यद्यपि पुरुष और स्त्री के कार्य-क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं, तथापि दोनों के ईश्वर तथा मानव-जाति के प्रति सेवा के कार्यों में एक विलक्षण साम्य है। दोनों सम-समान हैं। यह समानता की भावना तब और भी बढ़ जाती है, जब हम देखते हैं कि दोनों कार्य एक ही से महत्त्वपूर्ण और अन्योन्याश्रित—एक दूसरे के सहायक—हैं। दोनों को सम्पन्न करने के लिए सत्य का ज्ञान भी उतना ही आवश्यक है, जिसके बिना उनके कार्य लाभदायक होने के बजाय हानिकर सिद्ध होने की सम्भावना है।

पुरुष को अनेक प्रकार के कार्य करने का आदेश तो है, पर उसके तमाम खेती करना या बन्दूक बनाना आदि शारीरिक, मानव जीवन को ऊँचा उठाना या धन गिनना आदि मानसिक तथा मनुष्यों में एकता स्थापित करना या पाप के लिए उत्तेजित करना आदि धार्मिक कार्य तभी सफल होंगे, जब वह अपने अनुभूत सत्य के आधार पर इनको करेगा।

यही बात स्त्रियों के व्यवसाय के सम्बन्ध में भी है। उसका बच्चों को जन्म देना, उनका लालन-पालन और भरण-पोषण करना मानव-जाति के लिए उसी समय उपयोगी सिद्ध होगा जब वह केवल अपने आनन्द के लिए बच्चे नहीं किन्तु मानव-समाज के भावी सेवक उत्पन्न करेंगी; जब इन बालकों (बच्चों) की शिक्षा उस उच्चतम सत्य के नाम पर दी गयी हो जिसका उसे ज्ञान है; अर्थात् जिस समय उसने अपने बच्चों को शिक्षा इस-

लिए दी हो कि वे जहाँ तक हो सके मनुष्यों से लें कम और उनको दें अधिक। एक आदर्श स्त्री, जैसी कि मेरी भावना है, वह स्त्री होगी जो उस उत्तम जीवन-सम्बन्धी भावना और विश्वास का समीकरण कर चुकने के पश्चात् जिससे वह परिचित है अपने आपको उस मातृ-प्रवृत्ति के हवाले कर देती है जो अनिवार्य रूप से उसके हृदय मे स्थान पाये हुए हैं और अधिक से अधिक सख्या में ऐसी सन्तान उत्पन्न करती हैं, जो उसके जीवनोद्देश्य के अनुसार मनुष्य-समाज की सेवा करने योग्य हो। और इसी ढङ्ग पर वह लालन-पालन और भरण-पोषण भी करती है और उनको शिक्षा देती है। जीवन-सम्बन्धी यह भावना स्त्रियों के विश्व-विद्यालयों में दिखायी नहीं पड़ सकती—इसकी प्राप्ति केवल उसी समय हो सकती है जब मनुष्य उसकी ओर से अपनी आँखे और कान बन्द करले और अपने हृदय की विशालता और ग्रहण-शक्ति को बढ़ावे।

अच्छा, तो जिनके सन्तान नहीं है अथवा जिन्होंने विवाह नहीं किया है, उनको और विधवाओं को क्या करना चाहिए? उनके लिए यह अच्छा होगा कि वे भिन्न-भिन्न प्रकार के कामों में पुरुषों का हाथ बटावे। प्रत्येक स्त्री, जिस समय कि वह अपने बच्चों के साथ अपना काम समाप्त कर चुके, यदि वह काफी मजबूत है तो अपने पति के काम में उसकी सहायता कर सकती है, और ऐसी सहायता बड़ी मूल्यवान है।

× × × ×

ही फिर अलग-अलग हो जायें और ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहने लगे। शायद बच्चों को शिक्षा की व्यवस्था समाज ही करने लग जाय। किसी ने नवीन रूपों का दर्शन नहीं किया है और न कर ही सकता है। पर इसमें शक नहीं कि नवीन रूपों का निर्माण हो रहा है और पुराना रूप तभी टिक सकेगा, जब स्त्री पुरुष की आज्ञा में रहने लग जायेगी। यही अबतक सब जगह होता आया है, और जहाँ स्त्री पति की आज्ञा को माननेवाली है, वहीं सच्चा गार्हस्थ्य सुख भी देखा जाता है।

× × ×

कल मैं सियकिवीज का विदाउट डॉग्मा (W thout o[illegible]) पढ़ रहा था। स्त्री के प्रति प्यार का उसमें बड़ी अच्छी तरह वर्णन किया गया है। फ्रांसीसी वैषयिकता, अंग्रेज़ी मक्कारी और जर्मन दम्भ की अपेक्षा वह कहीं ऊँचा, कोमल और मृदुल है। मैंने सोचा, पवित्रप्रेम पर एक बढ़िया उपन्यास लिखा जाता, तो बड़ा अच्छा हो। उसमें प्रेम को वैषयिकता की पहुँच से ऊँचा बताया जाय। क्या विषय-वासना से ऊपर उठने का यह एक-मात्र रास्ता नहीं है? हाँ, बिल्कुल ठीक, यही है। बस, इसीलिए स्त्री और पुरुष बनाये गये हैं। केवल स्त्री के सहवास से वह अपना ब्रह्मचर्य खो सकता है और उसी की सहायता से उस की रक्षा भी कर सकता है। जरूर इस पर एक उपन्यास लिखना चाहिए।

+ × ×

लिए दी हो कि वे जहा तक हो सके मनुष्यों से लें कम और उनको दें अधिक। एक आदर्श स्त्री, जैसी कि मेरी भावना है, वह स्त्री होगी जो उस उत्तम जीवन-सम्बन्धी भावना और विश्वास का समीकरण कर चुकने के पश्चात् जिससे वह परिचित है अपने आपको उस मातृ-प्रवृत्ति के हवाले कर देती है जो अनिवार्य रूप से उसके हृदय मे स्थान पाये हुए है और अधिक से अधिक संख्या मे ऐसी सन्तान उत्पन्न करती हैं, जो उस जीवनोद्देश्य के अनुसार मनुष्य-समाज की सेवा करने योग्य हो। और इसी ढङ्ग पर वह लालन-पालन और भरण-पोषण भी करती है और उनको शिक्षा देती है। जीवन-सम्बन्धी यह भावना स्त्रियों के विश्व-विद्यालयों में दिखायी नहीं पड़ सकती—इसकी प्राप्ति केवल उसी समय हो सकती है जब मनुष्य उसकी ओर से अपनी आँखें और कान बन्द करले और अपने हृदय की विशालता और ग्रहण-शक्ति को बढ़ावे।

अच्छा, तो जिनके सन्तान नहीं है अथवा जिन्होंने विवाह नहीं किया है, उनको और विधवाओं को क्या करना चाहिए? उनके लिए यह अच्छा होगा कि वे भिन्न-भिन्न प्रकार के कामों मे पुरुषों का हाथ बटावें। प्रत्येक स्त्री, जिस समय कि वह अपने बच्चों के साथ अपना काम समाप्त कर चुके, यदि वह काफी मज़बूत है तो अपने पति के काम में उसकी सहायता कर सकती है, और ऐसी सहायता बड़ी मूल्यवान है।

× × × ×

ही फिर अलग-अलग हो जायें और ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहने लगें। शायद बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था समाज ही करने लग जाय। किसी ने नवीन रूपों का दर्शन नहीं किया है और न कर ही सकता है। पर इसमें शक नहीं कि नवीन रूपों का निर्माण हो रहा है और पुराना रूप तभी टिक सकेगा, जब स्त्री पुरुष की आज्ञा में रहने लग जायेगी। यही अबतक सब जगह होता आया है, और जहाँ स्त्री पति की आज्ञा को माननेवाली है, वहीं सच्चा गार्हस्थ्य सुख भी देखा जाता है।

× × ×

कल मैं सियंकिवीज का विदाउट डॉग्मा (Without Dogma) पढ़ रहा था। स्त्री के प्रति प्यार का उसमें बड़ी अच्छी तरह वर्णन किया गया है। फ्रांसीसी वैषयिकता, अंग्रेजी मक्कारी और जर्मन दम्भ की अपेक्षा वह कहीं ऊँचा, कोमल और मृदुल है। मैंने सोचा, पवित्र प्रेम पर एक बढ़िया उपन्यास लिखा जाता, तो बड़ा अच्छा हो। उसमें प्रेम को वैषयिकता की पहुँच से ऊँचा बताया जाय। क्या विषय-वासना से ऊपर उठने का यह एक-मात्र रास्ता नहीं है? हाँ, बिल्कुल ठीक, यही है। बस, इसीलिए स्त्री और पुरुष बनाये गये हैं। केवल स्त्री के सहवास से वह अपना ब्रह्मचर्य खो सकता है और उसी की सहायता से उस की रक्षा भी कर सकता है। जरूर इस पर एक उपन्यास लिखना चाहिए।

+ × ×

मनुष्य एक प्राणी है, इसलिए वह जीवन-संघर्षके सिद्धान्त तथा सन्तानोत्पत्ति की जन्मजात चेतना के अधीन हो जाता है। पर एक बुद्धिवादी प्रेमधर्मी और दिव्य प्राणी की हैसियत से उसका कर्तव्य विपरीत है। वह उसे जीवन-संघर्ष में अपने प्रतिस्पर्धी से झगड़ने का नहीं, उनसे नम्रता, शान्ति और प्रेम-पूर्वक व्यवहार करने का आदेश देता है। वह उसे विकाराधीन होने का नहीं, विकार पर अपना प्रभुत्व कायम करने का आदेश करता है।

× × × ×

मानव-जाति के सर्वश्रेष्ठ कर्तव्यों में ब्रह्मचारिणी तथा पति-व्रता स्त्रियों को तैयार करना भी है।

× × × ×

एक कहानी में कहा गया है कि स्त्री शैतान का शस्त्र है—सुकुमार प्रहरणं। स्वभावतः उसके बुद्धि नहीं होती। पर जब वह शैतान के हाथों में पड़ जाती है, तब वह उसे अपनी बुद्धि दे देता है और अब तमाशा देखिए। वह अपने नीचता भरे कार्यों के सम्पादन में बुद्धि, दूरदेशी और दीर्घोद्योग में कमाल कर जाती है। पर यदि कोई अच्छी बात करना है तो सीधी-से-सीधी बात उसके ध्यान मे नहीं आती। अपनी वर्तमान परिस्थिति से आगे वह देख ही नहीं सकती। बच्चे पैदा करने और उनका पालन-पोषण करने के कार्य को छोड़कर उनमे न शांति है, न दीर्घोद्योग।

पर यह सब उन कुलटा अब्रह्मचारिणी स्त्रियों के विषय में

कहा गया है। ओह! स्त्रियों को पवित्र स्त्री-धर्म का महत्त्व और गौरव समझने को दिल कितना चाहता है। 'मेरी' की कहानी निराधार नहीं। सती स्त्री संसार का अवलम्ब है।

× × × ×

स्त्री-धर्म सबसे ऊँचा सर्वश्रेष्ठ मानव-धर्म है, जिसके विषय में मैं ऊपर कह गया हूँ। गृहस्थ-जीवन और ब्रह्मचारी जीवन की तुलना करना—नागरिक-जीवन और ग्राम्य-जीवन की तुलना करने के समान है। ब्रह्मचर्य और गृहस्थ-जीवन साधारणतया मनुष्य के चित्त पर कोई असर नहीं डाल सकते। ब्रह्मचर्य और गृहस्थ-जीवन दोनों के दो-दो प्रकार हैं; एक साधुचित्त और दूसरा पापमय।

एक लड़की से, प्रत्येक लड़की से, और खास कर तुझसे जिसके अन्दर आध्यात्मिक शक्ति ने काम करना शुरू कर दिया है, मैं यह सिफारिश करूँगा और सलाह दूँगा कि वह समाज की उन सब बातों की ओर ध्यान न दे, जिनके देखने मात्र से विवाह आवश्यकता की कल्पना या औचित्य दिखाई देता हो। यथार्थ में विवाह से सम्बन्ध रखनेवाली तमाम बातों को टालती रहे। उपन्यास, संगीत, गपशप, नाच, खेल, ताश और चटकीले कपड़ों से भी दूर ही रहे। सचमुच, घर पर रहकर अपना कपड़ा सीना या कोई दूसरा उपयोगी काम करना, बाहर इधर-उधर अधिक-से-अधिक खुश-मिजाज लोगों के साथ घण्टों आमोद-प्रमोद में बिताने की अपेक्षा अधिक आनन्ददायक है। फिर वह आत्मा के लिए कितना फायदेमन्द होगा?

पर समाज की यह कल्पना कि एक लडकी के लिए अविवाहित रहना, चरखा चलाते रहना, बहुत बुरा है, सत्य से उतनी ही दूर है, जितनी कि अन्य कई महत्त्वपूर्ण विषयों से सम्बन्ध रखने वाली समाज की धारणायें हैं। ब्रह्मचारी रहकर मनुष्य-जाति की सेवा करना, दीन दुखियों की सकट में सहायता करना किसी भी विवाहित जीवन से कही अधिक श्रेयस्कर है। 'सभी मनुष्य इस कथन की सत्यता को स्वीकार न कर सकेंगे। परमात्मा ने जिनको निर्मल विवेक दिया है, वही इसकी यथार्थता का अनुभव कर सकेंगे।' (मैथ्यू अध्याय १६, २) संसार के प्राचीन, नवीन तमाम स्त्री-पुरुषों ने इस प्रश्न को इसी पहलू से देखा है और सच्चे ब्रह्मचारियों का उन्होंने आदर किया है, उनका नहीं जो मजबूरन ब्रह्मचारी रहे, बल्कि उन श्रेष्ठ पुरुषों का जो कि स्वेच्छापूर्वक परमात्मा की सेवा के खातिर ब्रह्मचर्य-धर्म का पालन करते रहे। पर हमारे समाज में वे सबसे अधिक हास्यास्पद समझे जाते हैं! यही बात उन लोगों के विषय में भी चरितार्थ होती है, जिन्होंने परमात्मा के लिए अपरिग्रह धर्म को स्वेच्छापूर्वक स्वीकार किया है, जिन्होंने श्रीमान् होने से इन्कार कर दिया है। मै प्रत्येक लड़की को और तुझको भी यही सलाह दूँगा कि हमेशा परमात्मा की सेवा का आदर्श अपने सामने रख। अर्थात्, यदि तुझे विश्वास होगया है कि विवाहित जीवन में तू यह न कर सकेगी तो तेरा कर्तव्य है कि तू अविवाहित रहकर ही परमात्मा के दिव्य प्रकाश को अपने हृदय में स्थान दे और उसी के सहारे

अपनी जीवन-नौका को खेती जा। पर यदि किसी कारण से किसी पुरुष के साथ तेरा अटूट प्रेम हो जाय और तू उससे शादी कर ले तो अपने पत्नीत्व तथा मातृत्व में ही संतोष न मानले, जैसा कि अन्य स्त्रियाँ करती हैं। बल्कि इसका ख़याल रख कि परिवार की पूर्ण सेवा करते हुए भी तू अपने जीवन के लक्ष्य की ओर—परमात्मा की सेवा की दिशा में—बराबर बढ़ती जा रही है। परिवार या बच्चों के प्रति अनन्य प्रेम तुझे परमात्मा से विमुख न करने पावे।

× × × ×

तुम्हारी उम्र और इसी परिस्थिति में पड़े हुए सभी युवक बड़े खतरे में है। यह समय तुम्हारे जीवन में बड़ा महत्वपूर्ण है। इस समय जो आदतें बनती हैं, वे हमेशा के लिए पत्थर की लकीर हो जाती हैं। तुमपर किसी का नैतिक या धार्मिक नियन्त्रण नहीं है। प्रलोभन चारों ओर से तुम्हें लुभा रहे हैं। बस, उन्हें तुम जानते हो और जानते हो केवल उन नियमों की कठोरता को,जो तुम्हें उनसे रोकने के लिए बनाये गये हैं। पर तुम उनसे मुक्त होने का मौक़ा देख रहे हो। तुम्हें यह अवस्था बिलकुल स्वाभाविक नज़र आती है। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। क्योंकि उसी परिस्थिति में तुम और तुन्हारे साथी मित्र छोटे से बड़े हुए हैं। पर फिर भी यह अवस्था तो निस्सन्देह अनावश्यक और ख़तरनाक है। अत्यन्त ख़तरनाक इसलिए है कि विषय-लालसा या प्रत्येक इच्छा की तृप्ति को ही यदि मनुष्य अपने जीवन का लक्ष्य बना ले,

जैसा कि अक्सर युवक लोग करते हैं, तो उनकी बड़ी दुर्दशा होगी, क्योंकि युवावस्था में विकार और काम बड़ा प्रबल होता है। धीरे-धीरे और प्रतिदिन अपनी इच्छा या काम की तृप्ति के लिए उन्हें नयी-नयी वस्तुओं को खोजना पड़ेगा, क्योंकि प्रकृति का यह नियम है कि विषय-लालसा की तृप्ति में किसी एक वस्तु के उपभोग से दूसरी बार उतना आनन्द नहीं आता जितना कि पहली बार आता है। स्वभावत ये विषयी युवक अन्धे की तरह नित्य नये खेल, तमाशे, कपड़े, संगीत आदि की खोज में दौड़ते फिरेंगे। एक यह भी कानून है कि आनन्द तो अकगणित के नियम के अनुसार बढ़ता है, पर विषय-तृप्ति के साधनों को बढ़ाना पड़ता है।

और तमाम विषयों में काम सबसे अधिक प्रबल है, जो स्त्री या पुरुष के प्रति प्रेम के रूप में प्रकट होता है। काम-चेष्टायें, हस्त-मैथुन, स्त्री-सभोग आदि तक मनुष्य की पहुँच बात की बात में हो जाती हैं। जब मनुष्य आखिरी सीमा तक पहुँच जाता है, तब उसी आनन्द को बढ़ाने के लिए वह कृत्रिम उपायों को खोजता है। तम्बाकू, शराब, कामोत्तेजक सगीत आदि का आश्रय लिया जाता है।

यह एक इतनी मामूली बात है कि प्रत्येक गरीब या धनाढ्य युवक इसका अवलम्बन करता है। यदि वह सँभल गया तब तो पवित्र जीवन व्यतीत करने लग जाता है, अन्यथा वह दीन-दुनिया से जाता है। मैंने कई युवकों को बरबाद होते अपनी आँखों देखा है।

अपनी परिस्थिति से छुटकारा पाने के लिए केवल एक उपाय तुम्हारे लिए है। ठहरकर विचार करो, अपने आस-पास गौर से देखो, और एक आदर्श ढूँढ़ो (अर्थात् अपने जीवन का लक्ष्य निश्चित कर लो) और उसकी प्राप्ति के प्रयत्न में प्राणपण से जुट पड़ो।

× × ×

मैंने यह हमेशा सोचा है कि मनुष्य की नीति के विषय में गम्भीर होने का सबसे बढ़िया प्रमाण उसका अपनी वैषयिकता पर कठोर नियन्त्रण करना ही है।

एन्० जिस जाल में फँस गया, वह एक प्रामाणिक और सत्यशील स्वभाव के मनुष्य के लिए जैसा कि मै उसे समझता हूँ, बिलकुल स्वाभाविक है। कुछ सम्बन्ध कायम हो गया था। उसने कुछ छिपाना नही चाहा, बल्कि साफ-साफ़ कबूल करके उसको आध्यात्मिक रूप दे देना चाहा।

प्रेम से उत्पन्न होनेवाली मानसिक अस्वस्थता को परमात्मा की सेवा में लगा देनेवाली उसकी कल्पना को मै पूर्ण रीति से समझ सकता हूँ। यह असम्भव नहीं। जो लोग अपने आपको इस परिस्थिति में पाते हैं, वे अपनी शक्ति को इस धारा में बहाकर उसको बेहद बढ़ा सकते हैं और महत्त्वपूर्ण परिणाम दिखा सकते हैं। मैंने यह कई बार देखा है। बल्कि मै ऐसे कई उदाहरण जानता हूँ। पर इसमें एक खतरा है। कई बार व्यक्तिगत भाव के अदृश्य होते ही तमाम शक्ति भी न जाने कहाँ ग़ायब हो जाती

है और परमात्मा के कामों में फिर किसी प्रकार की दिलचस्पी नहीं रह जाती। इसके भी कई उदाहरण मैंने देखे हैं। इसके मानी यह हैं कि परमात्मा की सेवा निष्काम होनी चाहिए। किन्ही बाहरी बातों पर वह अवलम्बित न होनी चाहिए। बल्कि इसके विपरीत सभी बाहरी बातों का आधार यह होनी चाहिए। उसकी आवश्यकता और उससे उत्पन्न होनेवाले आनन्द पर निर्भर रहनी चाहिए। इसी तरह मानव-जीवन के गौरव की तारीफ करके भी मनुष्य परमात्मा की सेवा मे लगाया जा सकता है, पर मनुष्य के अन्दर किसी व्यक्ति का विश्वास कम हुआ नहीं कि उसकी ईश्वर-सेवा का भी अन्त हो जाता है।

यह सब तुम जानते हो। तुमने यही कई बार प्रकट किया है। मैं तो एन. के साथ अपने सहमत होने के विषय में केवल एक बात और लिख देना चाहता हूँ। वह यही है कि स्त्री और पुरुष का ऐसा मेल अच्छा है, जिसका उद्देश परमात्मा की और मनुष्य-जाति की सेवा है। वैवाहिक या शारीरिक सम्मिलन उनकी इस सेवा-क्षमता को बढ़ा देता हो, सो बात नहीं। हाँ, कुछ लोगों की अशान्ति को, जिनका विकार बड़ा प्रबल होता है, यह जरूर मिटा देता है जो परमात्मा की सेवा में अपनी तमाम शक्तियों को लगाने के मार्ग में बड़ी बाधक साबित होती है। इसके कारण उन्हे जो शान्ति मिलती है उससे वे अपने चित्त को अधिक एकाग्र कर सकते हैं। इसलिए जहाँ ब्रह्मचर्य मानव-जाति के लिए श्रेष्ठ आदर्श जीवन है, वहाँ कमजोर तबीयत के लोगों के लिए विवा-

हित जीवन भी उनके विकार को शान्त कर उन्हें अधिक सेवाक्षम बनाने में सहायक होता है। पर इसमें एक बात को कभी न भूलना चाहिए और यही मैं एन्० से कह देना चाहता हूँ। स्त्री-पुरुष को यह अपने हृदय में अंकित कर लेना चाहिए कि यह मिलन की इच्छा उनमें इसलिए नहीं पैदा होती है कि वे इससे अपना दिल बहलावें, सुखोपभोग करें, कला-रसिकतापूर्वक सौन्दर्योपासना करें और सौन्दर्य का आनन्द लूटें और परमात्मा की सेवा करने के लिए शक्ति बढ़ावें, जैसा कि एन्० सोचता है, बल्कि यह प्रेम, यह मिलनेच्छा तो तुम्हें इसलिए दी गयी है कि तुम केवल एक ही स्त्री या एक ही पुरुष से प्रेम कर सन्तानोत्पत्ति करो और उस विकार से मुक्त होने की दिल से करो। इस शक्ति को या मिलनेच्छा को यदि दूसरे-तीसरे मार्ग में लगाया जायगा, तो उससे सेवा तो कुछ न हो सकेगी, अलबत्ता मनुष्य अपनी दुर्दशा को बेहद बढा लेगा।

इसलिए मैं इस बात में तुमसे पूरी तरह सहमत हूँ कि यह एक ऐसी हिस्सेदारी है या साझा है जिसमें मनुष्य जितना ही अधिक सावधान रहे, उतना ही उसका कल्याण होगा। हाँ, कोई पूछ सकता है कि हम अपनी जाति के व्यक्तियों के साथ जिस मित्रता से रहते हैं, वैसे स्त्री पुरुष-जाति के साथ या पुरुष स्त्री-जाति के साथ मित्रतापूर्वक क्यों नहीं रह सकती? क्या यह बुरा है? ठीक है, यदि हम अपने हृदय को कलंकित न होने दें, तो हम जरूर ऐसा कर सकते हैं। हम निर्विकार चित्त से उनको जितना

ही प्यार करें, अच्छा है। पर एक सच्चा और विवेकशील प्राणी फौरन कहेगा, जैसा कि एन्० ने कहा है, कि ऐसे सम्बन्ध बड़े नाजुक होते हैं। यदि आदमी अपने को धोखा न दे, तो वह ध्यान से देख सकता है कि बनिस्बत पुरुषों के सान्निध्य के उसे स्त्रियों के सान्निध्य में एक विशेष आनन्द आता है। वे आपस में जल्दी जल्दी मिलने की उत्कण्ठा रखने लगते हैं। बाइसिकल आसानी से और अनायास दौडने लग जाती है और इसके लिए अवश्य ही कोई कारण होना जरूरी है। ज्योंही एक सावधान प्रामाणिक पुरुष यह देखता है, यह जानकर कि अब हमारी गति और भी तेज हो जायगी और हमें विवाह-मडप में ले जाकर खडी कर देगी, वह फौरन अपनी गति को रोक लेता है और अपने को घोर पतन से बचा लेता है।

सन्तति-निरोध विपयक किताब को मैंने पढ़ा।*

अब इस पर क्या लिखूँ और क्या कहूँ ? यदि कोई आकर यह दलील करे कि लाश के साथ मैथुन करने में बड़ा आनन्द आता है और वह जरा भी हानिकर नहीं, तो उसके समझाने के लिए जो दलीलें पेश करनी पड़ें, वही इसके विषय में भी दी जा सकती हैं। पर ऐसे आदमी को समझाकर उसे अपनी ग़लती दिखा देना असम्भव है, जो यही अनुभव नहीं करता कि विषयोप

*यह पत्र तारीख ११ जुलाई १९०१ का है। संतति-निरोध के कृत्रिम साधनों पर लिखी हुई एक पुस्तक श्री० चेरकाफ द्वारा उनके पास भेजी गयी थी। उसीपर टाल्स्टाय ने अपने विचार प्रकट किये हैं।

भोग अपने और अपने साथी के लिए पातक है, अत: एक घृणित कार्य, है जो मनुष्य पशु-जीवन में ले जाकर खडा कर देता है। अरे! हाथी जैसा पशु भी इससे घृणा करता है।× यह तो एक ऐसा दुष्कर्म है कि इसका प्रचालन तो तभी हो सकता है, जब यह सन्तानोत्पत्ति के लिए ही किया जा रहा हो, जिसके लिए मनुष्य के अन्दर इसको प्रकृति ने रख दिया है। ऐसे बीभत्स कृत्य के विषय में जो दलीलें पेश करने बैठे, उसे समझना असम्भव नहीं तो क्या है ?

माल्थूज़ियन सिद्धांत धोखादेह है। नीति-शास्त्र को, जो कि सर्व-प्रधान है, वह गौण बताता है। इसलिए उसपर विचार करना ही मैं व्यर्थ समझता हूँ। मैं यह भी कहने और समझाने के झंझट में पड़ना नहीं चाहता कि इन कृत्रिम साधनों से सन्तति-निरोध करने के कार्य में और हत्या, कृत्रिम गर्भपात आदि पातकों में किसी किस्म का फर्क नहीं है।

क्षमा करो, इस विषय में गम्भीरतापूर्वक कुछ कहते हुए लज्जा और घृणा होती है। बल्कि इसकी बुराई को सिद्ध करने की अनावश्यक बात को छोड़कर मनुष्य को तो केवल वह खयाल करना चाहिए कि यह हमारे समाज में कहाँ तक बढ़ गयी

× प्राणीशास्त्र के ज्ञाताओं का कथन है कि हाथियों का अत्यन्त संयम प्रख्यात है। जब वे कैद हो जाते हैं, तब उनसे दूसरे बच्चे प्राप्त करना बडा कठिन होता है, क्योंकि उनको यह ख़याल रहता है कि उनपर किसी की नजर है।

है। इसने मनुष्य की नीतिशीलता को किसी हद तक मूर्च्छित कर दिया है। अब इसपर वाद विवाद करने का समय नहीं रहा। हमें तो फौरन इस बुराई को दूर करने मे जुट पड़ना चाहिए। अरे ! एक मामूली अपढ़ शराबखोर रूसी किसान को भी, जो अनेकों भयकर अविश्वासों का शिकार है, इस बेवकूफी के सुनते ही घिन आ जायगी। यह तो हमेशा विषयोपभोग को एक कुकर्म ही समझता आ रहा है। इन सुधरे हुए लोगों से जो इतनी अच्छी तरह लिख सकते हैं, और जिन्हें अपने जंगलीपन का समर्थन करने के लिए बड़े-बड़े सिद्धान्तों को नीचे खींचने में तनिक भी लज्जा नहीं आती, वह मामूली अपढ़ किसान कई गुना ऊँचा है।

× × × ×

मनुष्य-जाति के अन्दर नीति-शास्त्र के खिलाफ ऐसा कोई अपराध नहीं, जिसे मनुष्य एक दूसरे से इतना गुप्त रखने की कोशिश करते हों, जितना कि विषय-लालसा से सम्बन्ध रखने वाले अपराध हैं। न कोई ऐसा गुनाह इतना सर्व-साधारण और भयकर तथा विविध रूपों को धारण करनेवाला ही है। इसके विषय में जनता में जितने भिन्न-भिन्न मत हैं, उतने किसी दूसरे अपराध के विषय में नहीं है एक बात को जहाँ एक प्रकार के लोग अत्यन्त बुरी और घृणायुक्त समझते हैं, वहाँ दूसरे प्रकार के लोग उसी सुख की एक मामूली सुविधा समझते हैं। दुनिया में ऐसा एक अपराध नहीं, जिसके विषय में इतनी मक्कारी

प्रकट की जा रही हो। यह एक गुनाह है, जिससे सम्बन्ध होते ही फौरन मनुष्य की नीतिमत्ता का पता लग जाता है। व्यक्ति और समाज को विनाश के द्वार पर ले जाकर खड़ा करनेवाला इसके समान कोई अपराध ही नहीं।

× × × ×

ये विचार उस मनुष्य के लिए बड़े सरल और स्पष्ट हैं, जो सत्य को ढूँढने की गरज से विचार करता है। पर जो अपनी गलतियों और दुर्गुणभरे जीवन को अच्छा साबित करने की गरज से दलीलें करता है, उसे तो वे विचार विचित्र, रहस्यमय और अन्यायपूर्ण भी दिखायी देंगे।

इस काम का कभी अन्त नहीं आ सकता। अब भी मैं इस विषय पर एकसा विचार करता रहता हूँ। अब भी मैं बराबर महसूस कर रहा हूँ कि अभी इस विषय में बहुत कुछ सोचने-समझाने की आवश्यकता है। प्रत्येक आदमी इसकी आवश्यकता को जान सकता है, क्योंकि विषय अत्यन्त व्यापक और गम्भीर है और मनुष्य की शक्ति बिलकुल मर्यादित और थोड़ी है।

इसलिए मेरा खयाल है कि वे सब लोग जिन्हें इस विषय में दिलचस्पी हो, खूब काम करें। अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार इसका खूब अनुशीलन-परिशीलन करके सबको अपने विचार प्रगट करने चाहिएँ। यद्यपि प्रत्येक आदमी अपने विचार साफ-साफ प्रकट कर दे तो बहुत सी बातें यों ही साफ हो जायँ।

जिन बातों को हम बुरी प्रथा के कारण अब तक छिपाते रहे हैं, वे प्रकट हो जायँगी। अबतक अँधेरे में रहने के कारण जो बातें विचित्र-सी मालूम दे रही हैं, प्रकाश में आते ही उनकी विचित्रता जाती रहेगी। पुरानी प्रथा के कारण जो बुरी बातें अबतक मामूली रिवाज बन गयीं थीं, उनकी बुराई प्रकट होने पर हम उन्हें छोड़ने लगेंगे। कई सुविधाओं के कारण मैं इस महत्त्वपूर्ण विषय की ओर समाज का ध्यान अधिक आकर्षित कर सका हूँ। अब तो यह आवश्यकता है कि अन्य लोग भी सब तरफ से इस काम को जारी रक्खें।

———

# अन्य अवतरण

[ सन् १६०० से १६०८ तक के पत्रों तथा दिनचर्या आदि से ]

प्रेम दो प्रकार का है—शारीरिक और आध्यात्मिक। काल्पनिक सुख या सहानुभूति से वैषयिक या शारीरिक प्रेम पैदा होता है। इसके विपरीत आध्यात्मिक प्रेम अधिकाश में अपने दुर्भावों के साथ युद्ध करते हुए पैदा होता है। वह इस भावना से पैदा है कि मुझे किसी के साथ द्वेष नहीं, प्रेम करना चाहिए। यह प्रेम अक्सर शत्रुओं की तरफ दौड़ता है। यही सबसे कीमती और श्रेष्ठ है।

× × ×

आध्यात्मिक प्रेम के क्षेत्र से तुच्छ वैपयिक क्षेत्र में उतर आना सबके लिए साधारण है। पर युवा स्त्री-पुरुषों के जीवन में यह विशेषकर अधिक संख्या में पाया जाता है। मनुष्य-प्राणी की हैसियत से उसके लिए कौनसा प्रेम स्वाभाविक है, यह प्रत्येक मनुष्य को जान लेना आवश्यक है।

× × ×

अलबत्ता, वश को कायम रखने के लिए विवाह एक अच्छी और आवश्यक वस्तु है। पर इसके लिए माता-पिताओं में यह शक्ति और प्रबल इच्छा होनी चाहिए कि वे अपने बच्चों को

केवल हृष्ट-पुष्ट ही नहीं बनावे, बल्कि उन्हें ईश्वर और मनुष्य की सेवा करने के योग्य बनावे। पर ऐसा करने के लिए मनुष्य को दूसरे के परिश्रम पर नहीं, अपने परिश्रम पर जीना चाहिए। समाज से हम जितना लें, उससे अधिक उसे दें। हम लोगों मे तो यह कल्पना घर कर गयी है कि जब हम अपने पेट भरने के साधनों को अपने अधीन कर लें। तब विवाह करें। पर होना चाहिए ठीक इसके विपरीत। केवल वही शादी करे, जो बिना किसी साधन के जी सके और बच्चों का पालन-पोषण कर सके। केवल ऐसे पिता ही अपने बच्चों का अच्छी तरह पालन कर उन्हें शिक्षित बना सकते हैं।

× × ×

तुम पूछते हो कि 'प्रत्येक स्त्री को केवल एक ही पति करना चाहिए और प्रत्येक पुरुष को केवल एक स्त्री, यह नियम किस सिद्धान्त के आधार पर बनाया गया है?' और इस नतीजे पर पहुँचते हो कि इसके टूटने से किसी बुराई की सम्भावना नही है।

यदि उपर्युक्त नियम को एक धार्मिक नियम समझा जाय तो तुम्हारी शका बिलकुल ठीक है, क्योंकि धार्मिक नियम स्वतन्त्र और सर्वोपरि होता है। पर यह नियम स्वतन्त्र मूलभूत धार्मिक नियम नहीं है, हॉ, एक ऐसे नियम के आधार पर जरूर बनाया गया है। अपने पड़ोसी को प्यार करो। उसके साथ ठीक वैसा ही सलूक करो, जैसा कि तुम चाहते हो कि वह तुम से करे। इसी प्रकार निकम्मे न रहो चोरी न करो, आदि नियम भी मूल-

भूत धार्मिक नियमों से बनाये गये हैं। इससे पुराने ऋषि लोग जाहिर करते हैं कि एक ही मूलभूत नियम से किस प्रकार मनुष्य के कल्याण के लिए कई नियम बनाये जा सकते हैं। सांसारिक सम्बन्धों से चोरी न करने का नियम, जीविका प्राप्त करने के कार्य से निकम्मा न रहने का, अर्थात् दूसरे के परिश्रम पर अपनी आजीविका न चलाने का, मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्ध से अपराधी या आततायी से बदला न लेने का, बल्कि शान्ति-पूर्वक सहन करने और क्षमा करने का, और स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध से प्रत्येक को एक ही रूप या स्त्री से सम्बन्ध रखने का नियम बनाया गया।

धर्मशास्त्रकार कहते हैं कि यदि इन नियमों का पालन मनुष्य करेगा, तो उसका कल्याण होगा। संसार में जैसा व्यवहार करने का रिवाज़ पड़ गया है, उसकी बनिस्बत इन नियमों के पालन से उससे अधिक उपकार होगा। यदि कहीं इन नियमों के भङ्ग या अवज्ञा से कोई बुराई न भी पैदा हुई हो, तो भी उनका पालन करना अच्छा है। क्योंकि अबतक के अनुभव से यही सिद्ध हुआ है कि इनका भङ्ग करने से मनुष्य-जाति पर हज़ारों आप-त्तियाँ आयी हैं। दूसरे इस पातिव्रत या पत्नी-व्रत के पालन से मनुष्य ब्रह्मचर्य के आदर्श के अधिक नजदीक पहुँचता है।

तुम्हें एक युवक समझकर मैं चाहता हूँ कि तुम उस आदर्श को और प्रत्येक सच्ची, अच्छी वस्तु के निकट तक पहुँच जाओ। यह केवल अन्तःशुद्धि से ही हो सकता है।

यदि पुरुष का किसी स्त्री से सम्बन्ध हो जाय, तो वह उसका परित्याग न करे। ख़ासकर जब उसके बच्चा हो या होने की सम्भावना हो तब तो कदापि न छोड़े।

× × ×

पति-पत्नी के एक होने के विषय में धर्म-ग्रन्थ में जो लिखा है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। विवाह-ग्रन्थि द्वारा जो जोड़ दिये गये हैं वे कदापि बिछुड़ नहीं सकते। उन्हें कभी एक दूसरे को न छोड़ना चाहिए, न कोई ऐसा काम करना चाहिए जिससे परिवार में दुर्भाव उत्पन्न होजाय। तुम यह तभी कर सकते हो, जब परमात्मा और अपनी अन्तरात्मा के नज़दीक तुम्हारे लिए और कुछ करना असम्भव हो।

× × ×

मेरा ख़याल है कि पति का अपनी स्त्री को छोड़ना और ख़ासकर तब, जब उसके बच्चा हो, बहुत बुरा है। इसका परिणाम बहुत भयङ्कर होता है, उस बेचारी के लिए नही, बल्कि अपनी पत्नी को छोड़नेवाले उस पुरुष के लिए भी। मेरा ख़याल है कि अन्य लोगों की भाँति तुमने भी यह समझ की ग़लती की है कि विवाहित जीवन का उद्देश्य सुखोपभोग है। नहीं, यह विचार बिलकुल गलत है। विवाहित जीवन में तो सुख बढ़ते नही, घटते हैं। क्योंकि इस नवीन ज़िम्मेदारी के साथ-साथ कई कठिन कर्तव्य मनुष्य पर आ पड़ते हैं। विवाहित जीवन का उद्देश्य जिसकी ओर लोग इतने जोरों से आकर्षित होते हैं, सुखों का

बढ़ना नहीं, बल्कि मनुष्य-जीवन के कर्तव्यों की पूर्ति अर्थात् सन्तानोत्पत्ति है।

× × ×

तुम्हारे पुत्रके विवाह के विषय में मै यह निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि वे सब विवाह अच्छे हैं और सम्मान योग्य हैं, जिनमें पति-पत्नी यह प्रतिज्ञा करते हैं कि वे एक दूसरे के प्रति सच्चे और एकनिष्ठ रहेंगे। फिर यदि वे मन्त्रपूत भी न हों तो कोई परवाह नहीं।

मेरा ख़याल है कि तुम उस सर्व-साधारण और अत्यन्त हानिकर धारणा के शिकार हो रहे हो कि प्रेम-बद्ध होने के मानी सचमुच प्रेम करना है, और तुम उसे एक अच्छी चीज़ भी जान रहे हो। पर बात ऐसी नहीं है। वह एक खराब और बड़ा हानिकर विकार है। उसका परिणाम बड़ा दुःखदायी होता है। एक धार्मिक या नैतिक कानून का ज्ञान होने के पहले भले ही आदमी उसमें डूब सकता है; पर प्रेम-धर्म का ज्ञान होते ही इस तरह के वैषयिक प्रेम के चक्कर में आदमी कभी पड़ ही नहीं सकता। वही प्रेम सच्चा है, जो आत्म-विस्मरणशील और निस्वार्थ है। तुम अपनी पत्नी में इस प्रेम को देख सकते हो। वह तुम्हें सच्चा आनन्द देगा। दूसरे व्यक्ति के प्रति यह आकर्षण तुम्हें सिवाय दुःख के कुछ दे ही नहीं सकता, चाहे तुम उसमें कितने ही डूब जाओ, बल्कि उलटा तुम्हारे नीतिमय जीवन को वह नीचे गिरा देगा।

तुम सोचते हो कि तुम्हारा प्रधान उद्देश्य उस स्त्री को बचाना है। पर इसमें तुम अपने-आपको धोखा दे रहे हो। यदि तुम्हारी प्रधान इच्छा यही होती कि उस (स्त्री) की नहीं एक मनुष्य प्राणी की सेवा की जाय, तो इसे पूर्ण करने के लिए तुम्हें बहुत अवकाश था। नहीं, तुम्हारी प्रधान इच्छा सेवा नहीं, विषय-क्षुधा की शान्ति है और वह बहुत बढ गयी है। इसलिए यदि तुम मेरी सलाह मानो, तो मैं तुम्हें यही कहूँगा कि तुम उसके साथ कोई सम्बन्ध न रखो। बल्कि अपने अन्तःकरण में किसी एक व्यक्ति के लिए नहीं, समस्त मनुष्य-जाति के लिए प्रेम उपार्जन करने मे अपनी पूरी शक्ति लगा दो। यही प्रत्येक मनुष्य का मुख्य जीवन-कार्य है।

× ×

वैषयिकता मनुष्य-जाति के कष्टों के प्रधान कारणों में से एक है। विषय-वासना अकल्याण की जड़ है। इसलिए अनादि काल से मनुष्य-जाति इससे सम्बन्ध रखनेवाली तमाम बातों के विषय मे ऐसे नियम बनाती आयी है, जिससे कष्टों का परिणाम कम-से कम होता जाय। इन नियमों को भङ्ग करनेवाले अनेक कष्टों को भोगते हैं। केवल वासना के अधीन अपने को कर देना विवेक से हाथ धोना है। यह एक अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण, कठिन और जटिल सवाल है। ऐसी अवस्था मे यदि आदमी विवेक से काम न ले, तो अवश्य ही उसमें और पशु में कोई अन्तर नहीं रह जायगा। लोग कहते हैं, प्रेम एक बड़ा

पहले ही से सूचित कर रखा है कि मनुष्य को अपनी वैषयिकता पर खूब नियन्त्रण रखना चाहिए, अन्यथा उसपर महान् आपत्तियाँ पड़े बिना न रहेंगी। इस विषय में सरल से सरल और साफ़ से साफ़ कर्तव्य यही है कि स्त्री और पुरुष जो एक बार पारस्परिक विषय-बन्धन में बद्ध हो गये हों, अपने को हमेशा के लिए एक अमर-पाश में बँधा हुआ समझें और एक दूसरे के प्रति सच्चे रहें। बस, इसी का नाम विवाह है। असंयम से उत्पन्न होनेवाली महान् आपत्तियों से बचने के लिए तथा शिशु-संवर्द्धन के काम को सरल करने के लिए इस संस्कार की स्थापना की गयी है।

× × ×

शारीरिक प्रलोभनों से झगड़ना ही मानव-जीवन के कर्त्तव्यों की विशेषता है। जीवन का आनन्द इसी युद्ध में है। हर हालत में मनुष्य यह प्रयत्न कर सकता है और उसे विजय मिल सकती है। वही विजय प्राप्त नहीं कर सकता, जो इस नियम में विश्वास नहीं करता, पर बिना प्रयत्न के विश्वास उत्पन्न नहीं हो सकता। अत. सबसे पहला पाठ है अनुभव। प्रयत्न करो, और इस कथन की सत्यता को जाँच लो।

जो पतन से बचा हुआ है, उसे चाहिए कि इसी तरह बचे रहने के लिए वह अपनी तमाम शक्तियों का उपयोग करे। क्योंकि गिर जाने पर फिर उठना सैकड़ों नहीं, हजारों गुना कठिन हो जायगा। संयम का पालन करना अविवाहित और विवाहित

दोनों के लिए श्रेयस्कर है। तुम इसकी आवश्यकता में भी सन्देह करते हो। पर मैं इसका कारण समझ सकता हूँ। तुम ऐसे लोगों से घिरे हुए हो, जो इस बात का बड़े जोरों से समर्थन करते हैं कि संयम अनावश्यक ही नहीं, बल्कि अस्वाभाविक भी है।

तब पहले मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह संयम की आवश्यकता को समझ ले। वह समझ ले कि विवेकशील मनुष्य के लिए विकारों से झगड़ना अप्राकृतिक नहीं, बल्कि उसके जीवन का पहला नियम है। मनुष्य केवल पशु नही, एक विवेकशील प्राणी है। पशु ज्यादा खाते हैं; पर उनका वह खाना अन्य प्राणियों के साथ झगड़ने मे काम आ जाता है, क्योंकि एक जाति का प्राणी कई बार दूसरे का शिकार होता है। कई अन्य बाहरी बातें भी हैं, जिन्हें बदलना उनकी शक्ति के बाहर है। पर मनुष्य बुद्धिमान् प्राणी है। वह सबसे पहले अन्य मनुष्यों तथा प्राणियों के साथ जीवन-सघर्ष के स्थान पर विवेकशील व्यवहार को प्रतिष्ठित कर सकता है। दूसरे, वह उन बातों का प्रतिकार कर सकता है, जो उसके आध्यात्मिक जीवन के लिए हानिकर हो। यह सत्य है कि मनुष्य अभी अपने विवेक से काम नहीं ले रहा है और अपने ही जैसे प्राणियों के नाश पर तुल हुआ है। हजारों आदमी और बालक जाड़े, रोग और असीम परिश्रम के कारण मरते हैं। पर निःसन्देह एक समय ऐसा आवेगा, जब विवेकशील प्राणी एक दूसरे को मारने से बाज आवेंगे

और अपने जीवन की रचना इस तरह करेंगे कि उनकी संख्या आज की तरह पचास वर्षों में दूनी न होने पावेगी। वे इस तरह सन्तानोत्पादन नहीं करेंगे, जिससे कुछ ही सदियों में पृथ्वी मनुष्यों को धारण ही न कर सके। फिर क्या करेंगे? एक दूसरे की हत्या करेंगे? नहीं, यह असंभव और अनावश्यक है। अनावश्यक इसलिए कि प्रकृति ने मनुष्य के अन्दर वैषयिकता और अन्य पाशविक वृत्तियों के साथ-साथ ब्रह्मचर्य तथा पवित्रता की पोषक आध्यात्मिक वृत्ति भी दी है। यह सत्प्रवृत्ति प्रत्येक लड़के और लड़की में मौजूद रहती है और प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह इसकी रक्षा और संवर्धन करे। नीतिशील स्त्री-पुरुषों के सौभाग्य पतन का नाम विवाह है। विवाह के मानी हैं—वैषयिकता को एक ही व्यक्ति को एक ही तक संयम कर देना। अतः स्पष्ट है कि ब्रह्मचर्य और पवित्रता की उस वृत्ति का विकास विवाहित तथा अविवाहित जीवन में भी एकसा लाभदायक है।

इसलिए तुम्हारे पत्र के पढ़ते ही मेरे दिमाग़ में जो विचार आये, उनको यहाँ लिख दिया है। एक बूढ़े आदमी की सी हार्दिक सलाह देकर मैं इस पत्र को खत्म करता हूँ।

सत्य और सत् के लिए सत् का प्रयत्न करते रहना। अपनी पवित्रता की रक्षा में सारी शक्ति लगा देना। प्रलोभनों के साथ खूब झगड़ना। किसी हालत से हिम्मत न हारना। लगाम को कभी ढीली न करना। तुम पूछोगे, झगड़े कैसे? क्यों किया

जाय ? क्या न किया जाय ? निःसन्देह तुम व्यवहारिक उपदेश जानते हो। यदि न भी जानते हो तो उस विषय पर लिखी किसी किताब को विवेकपूर्वक पढ़ लो। शराब न पीओ, मांस न खाओ, धूम्रपान न करो, उच्छृङ्खल वृत्तिवाले साथियों के साथ न रहो। विशेष कर हलकी वृत्तियोंवाली स्त्रियों से सदा दूर रहो। यह सब तुम जानते हो या सीख सकते हो। मेरा तो उपदेश यही है और मैं उसपर खूब जोर दूँगा कि अपने जीवन के ध्येय को समझो। याद रक्खो कि शारीरिक विषय-सुखी नहीं बल्कि ईश्वर के आदेशों का पालन मनुष्य के जीवन का लक्ष्य और उद्देश है। विलास-युक्त नहीं, आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करो।

ब्रह्मचर्य वह आदर्श है, जिसके लिए प्रत्येक मनुष्य को हर हालत में और हर समय प्रयत्न करना चाहिए। जितना ही तुम उसके नजदीक जाओगे उतना ही अधिक परमात्मा की दृष्टि में प्यारे होंगे और अपना अधिक कल्याण करोगे। विलासी बनकर नहीं, बल्कि पवित्रतायुक्त जीवन व्यतीत करके ही मनुष्य परमात्मा की अधिक सेवा कर सकता है।

---

# सस्ता साहित्य मण्डल

## 'सर्वोदय साहित्य माला' की पुस्तकें

[ नोट—× चिन्हित पुस्तकें अप्राप्य हैं ]

१—दिव्य जीवन ।=)
२—जीवन साहित्य दो भाग १।)
३—तामिल वेद ॥।)
४—व्यसन और व्यभिचार ॥।=)
५—सामाजिक कुरीतियां× ॥।)
६—भारत के स्त्री-रत्न ३)
७—अनोखा× १।=)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान ॥।=)
९—यूरोप का इतिहास २)
१०—समाज-विज्ञान ॥।)
११—खद्दर का सम्पत्ति शास्त्र×॥।≡)
१२—गोरों का प्रभुत्व× ॥।=)
१३—चीन की आवाज़ × ।-)
१४—दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह १।)
१५—विजयी बारडोली× २)
१६—अनीति की राह पर ॥=)
१७—सीता की अग्नि-परीक्षा ।-)
१८—कन्या-शिक्षा ।)
१९—कर्मयोग ।=)
२०—कलवार की करतूत =)
२१—व्यावहारिक सभ्यता ॥)
२२—अँधेरे में उजाला ॥)
२३—स्वामीजी का बलिदान× ।-)
२४—हमारे ज़माने की गुलामी× ।)
२५—स्त्री और पुरुष ॥)
२६—घरों की सफाई ।=)
२७—क्या करें ? १)
२८—हाथ की कताई-बुनाई×॥=)
२९—आत्मोपदेश× ।)
३०—यथार्थ आदर्श जीवन× ॥-)
३१—जब अंग्रेज़ नहीं आये थे ≡)
३२—गंगा गोविंदसिंह× ॥=)
३३—श्रीराम चरित्र १।)
३४—आश्रम-हरिणी ।)
३५—हिंदी मराठी कोष २)
३६—स्वाधीनता के सिद्धान्त ॥)
३७—महान् मातृत्व की ओर ॥।=)
३८ शिवाजी की योग्यता ।=)
३९—तरंगित हृदय ॥)
४०—नरमेध १॥
४१—दुखी दुनिया ।=)
४२—जिन्दा लाश× ॥।
४३—आत्मकथा गांधीजी १) १॥)
४४—जब अंग्रेज़ आये× १।=)
४५ जीवन विकास १।)
४६—किसानों का बिगुल× =)
४७—फाँसी ! ।=)
४८—अनासक्ति योग =) ≡ ।)
४९—स्वर्ण-विहान× ।=)

५०—मराठों का उत्थान-पतन २॥)
५१—भाई के पत्र १)
५२—स्वागत× ।=)
५३—युगधर्म× १=)
५४—स्त्री-समस्या १॥।)
५५—विदेशी कपडे का मुकाबिला× ॥=)
५६—चित्रपट ।=)
५७—राष्ट्रवाणी× ॥=)
५८—इंग्लैण्ड में महात्माजी ॥।)
५९—रोटी का सवाल ॥।)
६०—दैवी सम्पद ।=)
६१—जीवन-सूत्र ॥।)
६२—हमारा कलंक ॥=)
६३—बुदबुद ॥)
६४—संघर्ष या सहयोग ? १॥)
६५—गांधी-विचार-दोहन ॥।)
६६—एशिया की क्रान्ति× १॥।)
६७—हमारे राष्ट्र-निर्माता-२ १॥)
६८—स्वतंत्रता की ओर १॥)
६९—आगे बढो ! ॥)
७०—बुद्ध-वाणी ॥=)
७१—कांग्रेस का इतिहास २॥)
७२—हमारे राष्ट्रपति १)
७३—मेरी कहानी (ज० नेहरू) २॥)
७४—विश्व-इतिहास की झलक (जवाहरलाल नेहरू) ८)
७५—पुत्रियाँ कैसी हों ? ॥)
७६—नया शासन विधान-१ ॥।)
७७—(१) गाँवों की कहानी ॥)
७८—(२-६) महाभारतकेपात्र १)
७९—सुधार और संगठन १)
८०—(३) संतवाणी ॥)
८१—विनाश या इलाज ॥।)
८२—(४) अँग्रेजी राज्य में हमारी आर्थिक दशा ॥)
८३—(५) लोक-जीवन ॥)
८४—गीता-मथन १॥)
८५—(६) राजनीति-प्रवेशिका ॥)
८६—(७) अधिकार और कर्तव्य॥)
८७—गाँधीवाद : समाजवाद ॥।)
८८—स्वदेशी और ग्रामोद्योग ॥)
८९—(८) सुगम चिकित्सा ॥)
९०—प्रेम में भगवान् ॥)
९१—महात्मा गांधी ।=)
९२—ब्रह्मचर्य ॥)
९३—हमारे गाँव और किसान ॥)
९४—गांधी-अभिनन्दन-ग्रंथ २)
९५—हिन्दुस्तान की समस्यायें १)
९६—जीवन-संदेश ॥)
९७—समन्वय २)
९८—समाजवाद : पूँजीवाद ॥।)
९९—मेरी मुक्ति की कहानी ॥)
१००—खादी-मीमांसा १॥
१०१—बापू ॥।)
१०२—विनोबा के विचार ॥)
१०३—लडखडाती दुनिया ॥)
१०४—सेवाधर्म : सेवामार्ग १)

## '[illegible]जीवन माला' की पुस्तकें

१—गीताबोध (दूसरी बार) महात्मा गाँधी -)
२—मंगल प्रभात (चौथी बार) महात्मा गाँधी -)
३—अनासक्ति योग (सातवी बार) महात्मा गाँधी =), ≡), ।)
४—सर्वोदय (तीसरी बार) -)
५—नवयुवको से दो बातें (तीसरी बार) प्रिंस क्रोपाटकिन -)
६—हिन्द-स्वराज (दूसरी बार) महात्मा गाँधी ≡)
७—छूतछात की माया—भदंत आनंद कौसल्यायन -)
८—किसानो का सवाल (तीसरी बार)--डा० जे. ए. अहमद =)
९—ग्राम-सेवा (दूसरी बार)—महात्मा गाँधी =)
१०—खादी और गादी की लडाई—विनोबाजी =)
११—मधुमक्खी-पालन—श्री चित्रे =)
१२—गाँवो का आर्थिक सवाल—झवेरभाई पटेल ≡)
१३—राष्ट्रीय गायन (दूसरी बार) —राष्ट्रीय गायन सग्रह =)
१४—खादी का महत्व—श्री गुलजारीलाल नन्दा -)॥
१५—जब अँग्रेज़ नहीं आये थे ≡)

## 'सामयिक साहित्य माला' की पुस्तकें

१—काँग्रेस का इतिहास (१९३५-३९) ।-)
२—दुनिया का रंगमंच – जवाहरलाल नेहरू =)
३—हम कहाँ है ? ,, ,, =)
४—युद्ध-संकट और भारत (संकलन) ।)
५—सत्याग्रह क्यों, कब, कैसे ? —गाँधीजी ≡)
६—राष्ट्रीय पन्चायत (संग्रह) ।)

## 'बाल साहित्य माला' की पुस्तकें

१—कथा-कहानी—बालोपयोगी रोचक कहानियाँ =)
२—सीख की कहानियाँ (२ भाग) बालोपयोगी शिक्षाप्रद कहानियाँ =)
३—शिवाजी चरित्र—छत्रपति शिवाजी का बालोपयोगी जीवनचरित =)
४—देशप्रेम की कहानियाँ—दुनिया के इतिहास मे से चुनी हुई देशप्रेम की ५ कहानियाँ =)